



नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

# स्वतन्त्रताके चार द्वार



सम्पादक—

ज्ञातपुत्र महावीर जैन-सघीय मुनि श्रीफकीरचन्द्रजी  
महाराज का चरण सेवक  
“पुष्प भिक्खु”

प्रकाराक—

“मुमुक्षु”

वीराब्द २४६६  
वि० १९६४

}

प्रथम संस्करण

}

ई० सन् १९३७  
अमूल्य मेट



नमो ध्रुवं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स ।

## स्वतन्त्रताके चार द्वार



### व्रत द्वार

निश्चयज्ञान मोक्षका कारण है, इस ज्ञानको पाकर जीव विरति को प्राप्त करता है, उसको चरित्र कहते हैं, क्योंकि ज्ञानका फल वैराग्य, त्याग और सयम है, और वह मोक्षका तात्कालिक कारण है।

इसमें प्रथम व्यावहारिक चरित्र महान्त और अणुव्रत रूप है, और यह पुण्यबंध तथा सुखका कारण है, इसका स्वीकार और पालन अभज्य जीव भी कर सकता है, जिससे वह मात्र देवगणिको ही प्राप्त कर सकता है ममर सकाम निर्जराका कारण नहीं हो-सकता, यदि कोई यह शका कर कि जत्र मोक्षका कारण भूत ही नहीं है तत्र इतना कष्ट सहना क्या अर्थ रखता है ? इसका समाधान लेने समय इतना ही न्याय ले लेना चाहिय कि—जो त्यागबुद्धि निश्चयज्ञान सहित चरित्र है वह ही मोक्षका कारण है अतः निश्चय चरित्र सहित व्यवहार चरित्रका पालन करना चाहिये।

निश्चय चरित्र—जो मुमुक्षु शरार, इन्द्रिय विषय, उपाय योग इन सयन परवस्तु समझ कर त्याग देता है, तथा आहारको पुद्गल वस्तु समझकर छोड़ देता है क्योंकि आत्मा अनाहारक है अतः मुझे भी आहार न करना चाहिये। इस भाँतिकी तब निश्चय-चरित्रम सम्मिलित है।

चरित्र क्या है ?—जिस पुरुषार्थस मनकी चंचलता चली जाती है, परिणामोमें आत्मिक स्थिरता आ जाती है, आत्म स्वरूपम एकरूपसे रमण करता है, उस रमणकी तन्मयता स्वरूप विश्रान्ति तन्वानुभवको चरित्र कहते हैं। वह चरित्र दशविरति और सयनविरतिक रूपसे दो प्रकारका है। परन्तु यहाँ दशविरति रूप चरित्र साधन रूप जो कि ध्यायके १२ अंग हैं उनका निश्चय और व्यवहारस ज्ञानी जन इस प्रकार व्याख्या करते हैं।

## (१) प्राणानिपात विरमण अत

इस अतम पर जीवको अपन समान समझा जाता है, सब जार्जोपर समान भावसे दया का जाती है, और यह व्यवहार दया है, अतः हमें व्यवहार प्राणानिपात विरमण अत जानना चाहिये। और जब अपना जीव कर्मके बशमे पडकर दुःखी होता है उस अपन जायना कमयसे मुक्त करना और आत्मगुणका रक्षा करते हुए गुणकी वृद्धि करना स्वर्ग्या है, वय हलु परिणतिका निवारण करते हुए स्व स्वरूप गुणका प्रगट करना, प्रगटित गुणकी

सम्यक् रक्षा करना अथवा ज्ञान द्वारा मिथ्यात्वोत्थो हटाकर आत्मीयत्वको निर्मल करना निश्चय प्राणातिपातविरमण व्रत कहलाता है।

**सार**—एसा यत्नपूर्णक कार्य करो, वचन गोलो और विचार करो कि जिससे किसी भी प्राण, भूत, जीव और सत्वको कष्ट न पहुँचे, अथवा कमसे कम भूतको कमसे कम कष्ट भी न हो।

## (२) मृपावादविरमण व्रत

असत्य वचन कभी न बोलना चाहिये, यह व्यावहारिक मृपावाद विरमणव्रत है, और निश्चय दृष्टिसे परपुत्रलादिक वस्तुओंको अपना कहना मृपावचन है, और जीवको अजीव कहना तथा अजीवको जीव कहना यह सब अज्ञान जाल और भागमृपावचन है। अथवा सिद्धान्तक अर्थोंको उल्टा और असत्य कहना जिससे अहिंसाक ददले हिंसा बन जाय यह भी भावमृपा है। इत्यादि मृपा भाषण करना जिमने त्याग दिया है वह निश्चय मृपावादविरमणव्रत कहलाता है, इम दृष्टिमे व्यावहारिक अदत्तादानादिका भग यदि प्रमादसे हो जाय तब भी उसका मात्र चरित्र भग्न होता है परन्तु उसक ज्ञान दर्शनका भग नहीं होता। और जिसन निश्चय मृपावादविरमणका भग कर लिया हो उसने सम्यक्त्व तथा ज्ञान और चरित्र इत तीनों ही का भग कर दिया। तथा आगमोंमें यह भी कहा है कि एक साधुने चतुर्व्रतका भग कर दिया है और एक साधुने दूसरा मृपावाद नामक महाव्रत उत्सूत्र अथात् हिंसाके धर्म जनाकर

उस भाग कर दिया है। तब जिसन चौथा प्रत भाग किया है वह भी आलोचना द्वारा शुद्ध हो सकता है परन्तु जिस प्रसूत्रभाषीन सिद्धान्तर् अर्थका मृपा और मापन उपदेश किया है वह आलोचना द्वारा भी कभी शुद्ध नहीं होता।

**भावार्थ**—जिस बातकी तुम जिस रूपमें जानन हो, मानित हो, वही बात उसी रूपमें कहना चाहिये। लाभक डरस उस बातका छेन्न भदन न करो, लोकभय, नैतिक निर्भरता, लोकपणा इन सबको गहरे और सूत्रे छुर्सेम केक दो। इसी प्रकार हसी, मगधरा, परनिष्ठा, निरर्थक भूठी गपगप आदि हातिकारक या अनुत्पादक प्रवृत्तिम अपने बचनका कभी दुर्गम धीग मन करो।

### (३) अदत्तागानविरमण प्रत

जो पुरुष कभी किसी अन्यका धन, अन्यकी वस्तुका छिपाता है, हडपना चाहता है, चोरी करता है, टगनाजी फरता है, धोखा देता है, यह सब धोरी है। अन पर वस्तुको स्वामीकी आगाये बिना न लेना यह सब व्यवहारस अदत्तागान-विरमण प्रत जानना चाहिये, और जो पाँचों इन्द्रियोंके २३ विषय हैं, आठ कमधर्माणा हैं, इत्यादिक इन परवस्तु छुडल प्रवृत्ति न करनी चाहिये। न कभा उनकी वंछा ही करनी चाहिये। क्योंकि यह आत्माके लिये अग्राह्य है, अत यह निश्चय अदत्तागानविरमण प्रत पहलता है। यदि थोड़े कहे कि—विषय और कमकी वंछा कौन करता है? उस तो जालना ही साथ है

परन्तु वस्तुस पुण्यको अत्यन्त आदरणीय समझत है, मानो व जीव कर्मकी बाधा कर रह है। क्योंकि जिस पुण्यक ४० भेद है वे नामकर्मकी शुभ प्रकृति है। अत जो व्यवहारमे तो अदत्तादान नहीं लेता है परन्तु अन्तरगमें पुण्यादिककी इच्छा रहनेके कारण उसे निश्चय अदत्तादानका दोष लगता है।

**भावार्थ—**जिस वस्तुपर, जिस मनुष्यपर, जिस अधिकार पर, जिस यश पर, जिस दुस्साहसपर तुम्हारा उचित अधिकार न हो उस वस्तु, मनुष्य यश, अधिकार, साहसके ऊपर दात मन रखो और किसीक हक्कपर कभी प्रहार मत मारो।

### (४) मैथुनचिरमण घत

जो पुरुष परस्त्रीका त्याग करता है, तथा जो स्त्री परपुंसका परिहार करती है, साधु सर्पया त्यागी है, और गृहस्थको विनाहितका आगार है। परस्त्री या परपुंसका सर्पया त्याग है वह व्यापहारिक मैथुनचिरमण घत कहलाता है और जिसने विषयकी अभिलाषाका तथा ममता-नृष्णाका त्याग किया है परभाव-विभाव वगादिक परद्रव्यका स्वामित्व छोड़ दिया है पुत्रलका सग अमोगी है, आत्मा-व निज गुण जो ज्ञानादिक हैं उन्हींका उपभोग करता है, पुत्रल-स्कन्धोकी अतन्त्रानन्त जीवोकी भूठन समझ कर उसको कभी भूलकर भी नहीं भोगता है। इस त्यागको निश्चयसे मैथुनचिरमणघत कहा है। परन्तु जिसने बाह्य विषय छोड़ दिये हो और अन्तरगका प्रलोभन न छूटा हो तब उसे मैथुनकर्म अवश्य लगता है।



मायार्थ—तुम्हें जो धीरे मिले है उससे अपनी तथा  
 औरगी की अनक प्रफारकी अनिमी साधक लिय प्रयत्न करना  
 सबसे पहला और अनिवार्यसाधन है। उसे पारमार्थिक सन्तोषके  
 लिये न उठा देना चाहिये। उद्योगोंके व आनन्द या  
 पहचानना साम्ये। यदि हो सक्ता हो और तुमको उचित  
 ज्ञान हो तो अरुण्ड प्रकृति धन कर भी रहो। यदि यह न  
 हो सक तो तुम्हारे विचारकल्पि विनरूप न हो एसी मुशीला  
 सहचारिणीकी तलाश करके उसके साथ लग्नस सन्तुष्ट रहो, एक  
 दूसरेके लिये अनुकूल और सहायकारी हो सक एसा पात्र न मिल  
 सक तो अविवाहित रहनेकी पूर्ण चष्टा करो, विवाहित स्थिति वह है  
 जिमसे आपक चारो ओरसे उडनवाली वृत्तियां एक सक, या उनका  
 सकोच हो जाय। यदि वह स्थिति शोनोंको या दोनोंमस एकको  
 असन्तोषका कारण हो पड़े तो उल्टा हानिकर सिद्ध होनेकी  
 सम्भावना है। अतः तुम्हारी शक्ति विचार, स्थिति साधन और  
 पात्रकी योग्यताका तुम्ह स्वयं इन सवका गहरा विचार करके विवाह  
 करना या कुमार रहना चाहिये। विवाह करना मनुष्यका मुख्य  
 नियम और कुमार रहना अपवाद माना गया है। इसका दूजे  
 कुमार रहना और मरने सव का मुख्य विषयोंकी अनुकूलता हो  
 नय हो विवाह करना इस मुख्य नियमकी मान्य रक्ता चाहिये और  
 विवाहित स्थिति या विषयमासनाका अमरादा इच्छानुसार स्वन-  
 न्तक रूपम भूलभूत कर भी न मान बैठना। कामनाका सक्षेप  
 और दृष्टान्त आत्मिक एक्य करना सीखो। अश्लील शब्दोंसे

अश्लील दिवाय और वनागसे तथा अश्लील कल्पनाओसे सदैव अलग रहो। किसीको लग्न या विवाहमें जोर देना तुम्हे क्या हक है। विवाहक भावको न समझनेवाले सहचारीपनक कर्तव्यको न पहचाननेवाले पात्रोंको एक दूसरेके कर्तव्यको गुलामीमें फँसनेवाला चौधे व्रतका अग्र्य भग करता है। दयाका रून करता है और चोरी करता है।

### (५) परिग्रह परिमाण व्रत

परिग्रह धन, धान्य, दास, दासी, द्विपद चतुष्पद, भूमि, वस्त्र आभरणादि हैं, इसका साधुको तो सर्वथा त्याग होता है। परन्तु धारकको इन्ताना परिमाण अवश्य करना होता है। निरती इच्छा होती है नतना आगार रखता है। शेषकी विरति करता है। इसका यह त्याग व्यवहारसे जानना चाहिये, और जो भावकर्म राग, द्वेष, मोह और अज्ञान आदि हैं, तन्ना द्रव्यकम ज्ञानावरणीयादि आठ कम और शरीरादि है इनका परिहार करना यानी कर्मको जान धूम कर छोड़ना निश्चयपरिग्रहत्याग कहलाना है। अथात् पर वस्तुकी मूद्राका छोड़ना आवश्यक है निसन मूद्राभाव छोड़ दिया हो समझो कि उसने परिग्रहको ही छोड़ दिया।

**भावार्थ**—परिग्रह अथात् प्रभुत्व-मिलकियतकी इच्छाका नकोच करो। 'सत्र कुछ मैं भोग लूँ' मैं ही छोड़पनि बन जाऊँ, मैं महलोका स्वामी बन जाऊँ, एसे अहमय, म्यार्थमय, सतुचिन विचारोंको यथाशक्य एकदम कम करो।

इस आशाका औहे शिकनया यह आशय नहीं है कि—तुम नग

फिरा, घरदार छोड़कर गन्नाया धन जाआ, भूमे मरा, कुटुम्ब, जानि, दश, समाजना भरण पोषण ही न करो, और उहे या हा दुरी होकर मरने दो, यह नही बन्कि लोभ प्रवृत्ति, मोह प्रवृत्ति, ममत्वभाव, जड प्रवृत्तिमे या जड प्रवृत्ति तथा पदार्थकी प्राप्तिमे आनन्द मानना छोडो। इन सब विकारशील वस्तुआको छोडकर प्रामाणिक बुद्धिपूर्वक सहनशीलता पूर्वक, व्यवस्था पूर्वक, यथोचित उद्यमस मिलनगाले धनके द्वारा अपने आर्त्तिकी आवश्यकताएँ पूर्ण करनमे सब करनमे अनिरिक्त, उस धनपर मोह ममता न रखकर धानीका भाग औरोंकी आवश्यकताओको पूर्ण करनमें तथा दश रआमे उल्लासके साथ उसका रचके करो, परिग्रहक उपर नितने प्रमाणमे मूछा कम होगी उननी हा चित्त शान्ति अधिक होगी।

### (६) दिशिपरिमाण व्रत

छहो दिशाओंक क्षेत्रोरी मयादा करना व्यवहार निशि प्रमाण कहलता है, और चार गतिमे भटकना कर्मका परिणाम है, यह समझकर उस कर्म सचयना ओरसे उत्पत्तीनता स्वाकार करना और सिद्धास्थानी उपाययताका लक्ष्य करना निश्चयदिशिपरिमाणव्रत है।

**भावार्थ**—आशय विना, उपयोगविना, परमार्थ रहित ध्रमण करना यथाशक्य एतन्म कम कर देना चाहिये।

### (७) भोगोपभोगपरिमाण व्रत

जो एक बार भोगनमे आता है वह भोग और पुन पुन

वस्तुका भोगना उपभोग है इमका परिमाण करना व्यनहार भोगोपभोगपरिमाणत्रत है। व्यनहार नयस कर्मका कत्ता और भोक्ता जीव है और निश्चयनयसे तो कर्मका कत्ता कर्म ही है। आत्मा अनादि कालसे परभावना भोक्ता हो रहा है, जिससे परभाव माहक और परभाव रक्षक बन गया। अथात् आत्माकी क्षायकता, माहकता, भोग्यता, रक्षकता, त्रिगटनेपर कत्तापन विगड गया, तत्र पर भावना कर्ता हो गया। जिससे परभावन रगमे रगकर आठ कर्मका कत्ता हो गया है। परन्तु सत्ताकी अपथासे तो स्वभावना कर्ता है, परन्तु उपकरणोंपर आरण द्या जानैक कारण स्वकार्य नहीं कर सकता, और विभावको करता आ रहा है। अज्ञाननासे जीवना उपयोग पुटलने मिला है। अपन ज्ञानादि गुणका कत्ता और भोक्ता है एसा स्वरूपानुयायी परिणाम निश्चयभोगोपभोगपरिमाणत्रत कह-लता है।

**भावार्थ—**उपभोग और परिभोगकी लालसा मयाडिन करो, दिन रातकी टेबोंम सादगी पैग करा, आत्म-संयमी बनो, नियमित और मिनाहारी बनो। तुम्हारी जितनी आवश्यकताएँ कम होगी, तुम्हारी जनी ही चिन्ता, उपाधि और लालच भी कम होगा, और अधिक् महत्त्वकी प्रवृत्तिकी ओर लक्ष्य बनना पूर्ण अत्रकाश मिलेगा। दसा-स्रोस, सानगानीस मूठे सयालोंसे, घडप्यन बतानकी मूर्ता युक्त लोलुपतासे अच्छा त्रिखनकी लालसास और गुणदोष समझनकी जुटिक अभावसे अनक बनासश्यन तगी उत्पन्न हो जाती है,

और व शारीरिक नियंत्रण, मानसिक व्यथना और बुद्धिहीनता पैदा कर डालती है। अतः उपभाग परिभोग पर्याय आवश्यक उपयोगी यानी, उपयोगक मिट्टान्तको निम्नता जयाय द सको नत हा रकयो अधिक न रफयो ।

### (=) अनर्थदृष्टविरमण घन

बिना काम जीवना बंद करना, औरोंके लिये ब्यारम प्रभुत्व करनेकी आशा आदि कता ब्यवहार अनर्थदृष्ट है, और शुभाशुभ कर्म, मिथ्यात्व, अविरति कपाय योगस जो बधन होक्ता है न्ह जीव अपना कर मानक्ता है यह निश्चय अनर्थ न्ह है ।

**भारार्थ**—अर्थरहित, प्रयोजन रहित, 'व्यापारम' प्रवृत्तिम मन, बचन, कायको प्रवर्तित न होने दो, गटफट, निन्दा, तुष्यान चिन्ता, कुतर्कमेत, भय, भय आदिमे शरीर-सम्पत्ति, धन सम्पत्ति, समय-सम्पत्ति तथा संकल्प सम्पत्तिको उडा मन दो, आर्तध्यान कधना चिन्ता और रौद्रध्यान अधना किमीपर क्रोधमय विचार करना निर्बलनापूर्ण और निश्चय है। आनन्दमय, वीरत्वमय, आत्म प्रभुका द्रोह करनक समान है, इससे मनुष्यकी श्रीणता हो जाता है।

### (६) माम्मायिक घन

मन, बचन, कायको आरभत हटाकर न्ह निरारभ रूपमे लगाना 'व्यवहारमामायिक' है, और जो 'चावका ज्ञान, दर्शन, चरित्रका गुण विचारना है सब जावाका सत्ता और गुण समान ज्ञानकर मनस सम परिणामका रखना 'निश्चय माम्मायिक' है। और यह समतारप है।

**भावार्थ**—प्रति दिन नियमित समयपर जितना हो सक उतन समय तक लिये समतोलन वृत्तिक सीखनेका अभ्यास करना चाहिये ।

### (१०) देशाचक्राशिक व्रत

मन वचन और दह योगको एक स्थानपर नियुक्त करके एक स्थानपर बैठकर धर्म-ध्यान करना व्यावहारिक दशाचक्राशिकव्रत है, और जो श्रुतज्ञानक द्वारा उहो द्रव्योंको पहचानकर उनमेसे पाच द्रव्योंको पर समझ त्यागकर दना और स्वभावका चिन्तन करना निश्चयदशाचक्राशिक है ।

**भावार्थ**—स्वदशके धारणके पदार्थ, वस्तु यथाशक्ति काममे न लो, स्वदश-प्रेम और स्वदशाभिमान सत्रैय रक्खो। अपने दशको श्रृयसे तटफा तटफा कर मारनमे आप साधनभूत मन बनो ।

### (११) पौषत्र व्रत

चार पहर अथवा जाठ पहर तक समताभाव और शुभ परिणामसे मायत्र (पाप) कर्मको छोटकर निरारभतासे स्वाध्याय और ध्यानमे लगे रहना व्यवहार पौषत्र है और अपन आत्माको ज्ञान ध्यानसे पोषकर स्व स्वभावमे स्थिर करना 'निश्चयपौषत्रव्रत' है । अपन गुणोंमे जीयकी पुष्टि करना ही पौषत्र है ।

**भावार्थ**—प्रत्येक माममे छ नार या इमसे अधिक जन भी आपको अवकाश मिले, तथा अनुकूल शारारिक, मानसिक स्थिति होनेपर भूमे रहो, पर पदाथ खानकी आपन छोडो। निसत आपका

शरीर निरोगी और सहनशील बन सके। इस स्थितिमें २४ घंटे या २१ घंटे आत्म रमणनामे व्यनीत करो।

## (१०) अतिथिसविभाग व्रत

पौषवक पारणकक जिन अथवा सदा सदा साधुको तथा सह-धर्मों ग्राहकको या उचित पात्रको अपनी शक्तिक अनुसार दान दना व्यवहार अतिथिसविभाग है, और अपने जीवको अथवा शिक्षा-पात्रको ज्ञान दान दना, पढना पढाना, सुनना-सुनाना निश्चय अतिथिसविभाग व्रत है। इन व्रतोंको जो निश्चय और व्यवहारसे धारण करता है वह पात्र दशविरति गुणस्थानपर आराहण होता है। और आत्माकी उपासनामे योग्य होनसे 'श्रमणोपासक' भी कहलाता है।

**भावार्थ**—उपकारी पुण्योंकी सेवा भक्ति करनका प्रसंग मिलन-पर उदासत उनकी सेवा करो। जो पुण्य जगत्क उपकारमे ही अपना जीवन बिता रहे हैं, जिन्हें अपन शरीरकी सार संभाल करन जिनकी भा कुमन नहीं है। उनक अस्तित्व, आरोग्य और प्रवृत्तिकी ससारकी अधिक आवश्यकता होनेक कारण उनकी तगाका जानना और उन्हें पूण करनमे तत्परता बनाना भी उपकृतवगका मुख्य कर्तव्य है। उनक उठाये हुए मिशनोंको निभानक लिय अपना शरीरकल धनकल, कर्तव्यपरायणताकल, लक्ष्यकल, समय, बुद्धि आदिकी सहायता जो जानसे दनी चाहिये। उनकी कठिनाई और दुःखों तथा सङ्घोंमे महालुभूति पूर्वक उन्हे प्र करनके लिये यथाशक्य

बड़ी भारी सहायता करनी चाहिये, और उनकी जयमें अपना जय तथा समाजका जय मानना चाहिये। यह स्वतंत्रताका पहला शत द्वार है।





# सत्य

जो पुण्य केवल आत्मानन्दमे ही अहनिशा  
रमण करते हैं, उनको त्रिकाल वन्दना है ।

इस अलौकिक विश्वके सुरम्य और सौन्दर्यपूर्ण दृश्यों और  
दृष्टि फेलातपर स्पष्टतया नजर आता है कि—अखिल विश्व आनन्दमे  
परिपू है। अधान् अखिल विश्वमे आनन्दकी अपेक्षास एषता है।  
लगनूस उस धर्म भिन्न नहीं है विश्वक प्रत्येक प्राणी आनन्दमे है  
उन्ह आनन्द ही प्रिय है। अत उसाकी इच्छामे तन्मय है। उस  
आनन्दका प्राप्त करनर लिय सामन रूप ही बिरमे धर्म है  
और उन धर्मका प्राणियोंन अपने 'आनन्द' क लिय ही उत्पन्न किय  
है और आनन्दका अपेक्षा नगनूस सय प्राणी समान है। तथापि  
व्यक्तिकी अपेक्षासे यदि दया जाय तो मनुष्य एक उत्कृष्ट प्राणी है  
और वह आनन्दकी अभिवृद्धिके लिये अनेक जास्येण एय सुरम्य  
उपायाना रचना करता रहता है। मनुष्यक रचे हुए आत्मानन्दकी  
अभिवृद्धिके उपायाने धर्म ही एक सर्वोत्कृष्ट उपाय है। प्रत्येक  
प्राणीक आनन्दका स्वरूप समान है। प्रत्येक प्राणीके आत्मानन्द  
सामर्थ्य समान है। प्रत्येक प्राणीका वास्तविक स्वरूप भी समान  
है। तय तो इन अपेक्षामे सामन रूप धर्मका होना भी समान ही  
ठाम है, और उमाक अनुमार सम्पूर्ण समान ही है।

मनुष्य कुछ ऐसा प्राणी है कि—वह आत्मानन्दकी अभिवृद्धि बहुत जल्दी कर सकता है। इतना ही नहीं बल्कि जो जो मनुष्य आत्मानन्दका अनन्त अनुभव प्राप्त कर चुक है वे व मनुष्य अपने पीछेकी अधातु भविष्यकी मनुष्य जातिके लिये पाया हुआ आत्माका साधन रूप धर्म भूतलवासी मनुष्य जातिके लिये रमारक रूपमें छोड़ गये हैं। उस धर्म रूपी उपकरण या साधन द्वारा इन मनुष्य आत्मानन्दके अलौकिक आनन्दत्वको प्राप्त कर सकते हैं। जगत्के अन्य प्राणी इस प्रत्यक्ष विश्वकी अलौकिक प्रभास आनन्दित होते हैं। परन्तु मनुष्य संज्ञाका प्राणी तो स्वयं निजानन्दमय बन कर उस अपने आनन्द द्वारा अग्निल विश्वके अप्रतिम आनन्दमें सुरम्य तथा उपादयकी अभिवृद्धि कर सकता है। मनुष्योंका जो धर्म है वही अलौकिक आनन्दकी अभिवृद्धि वाग्वी रूप है। यह सृष्टि अनन्त कालसे अनन्ततत्त्वके रूपमें ज्योंही त्यों चली आ रही है, और ध्रुव रूपसे अपने अनन्त तत्त्वमें अनन्त तत्त्व रूपसे अलौकिक स्वरूपमें अनन्त काल तक शाश्वत स्वरूपमें ही—सत्य स्वरूपमें ही अलौकिक आनन्द रूपसे स्थिर और नित्य रहेगी। सृष्टि मीमांसक शास्त्री भी यही कथन करते हैं कि यह सृष्टि अलौकिक वस्तु है, और यह नित्य तथा शाश्वत है।

इस सृष्टिके अलौकिक सामर्थ्यसे भरपूर अलशारोम धर्म ही एक सर्वोत्कृष्ट अलकार है। जगत्में धर्ममीमांसक अनेक ही हो गए हैं, और वे अलौकिक अलकार रूपसे अपने धर्मविचाररूप प्रसंगीसे इस भूतलको अलंकरण कर गये हैं। इन अलौकिक

प्रामाण्योपेक्षित इमं समग्र—वेदान्त, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, 'याय, वैशेषिक, पूर मीमांसा, उत्तर मीमांसा, शैव, वैष्णव, स्वामीनारायण, मुस्लिम, इमाद, यदृत्नी, पारसी आदि मुख्यतासे दृष्टिगोचर होते हैं। इनका तथा इनका अतिरिक्त और और अनेक घमालभाराका हेतु प्रबल आत्मानन्दको ही प्राप्त करानाका है। सर्व धर्मका हेतु एक होकर उनके सधन भी एक ही हो जाने हैं, और वे अलग अलग दश कालपर आधार रखकर अलग अलग रूपमें प्रवृत्त हो रहे हैं। जैनका हेतु प्रबल आत्माका पहचानना और उस मोक्ष तक ले जाना ही है।

वेदान्तिक, वैष्णव, स्वामीनारायण, तथा योगीजन भी यहाँ कहते हैं जितम जैन कहते हैं कि—

‘एग जाणइ से सत्र जाणइ’

जो एकको जानता है वह सबको जानता है। वेदान्तकी मगरती श्रुति भी कहती है—

‘आत्मनि विनाते सर्वमिदं विज्ञानं भवति।’

एक अत्माके जाननेसे यह सब खुल जाना जा सकता है। जैन कहते हैं कि—‘अप्पा सो परमप्पा’ आत्मा ही परमात्मा है।

तब वेदान्त कहता है कि—

‘अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म।’

‘मैं ब्रह्म अर्थात् परमात्मा हूँ’

‘तू भी वही है’

प्रकर्ष तथा सम्यग्ज्ञान ही ब्रह्म है'

'यह आत्मा ब्रह्म है' ।

वदन् चार स्रष्ट हैं, इन चारों स्रष्टोंमें एक एक महाशक्त्य है ।

प्रज्ञान ब्रह्म' यह ऋग्वेदका, 'अह ब्रह्मास्मि' यह यजुर्वेदका, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह अथर्ववेदका, और 'तत्रमसि यह सामवेदका छांदोग्योपनिषद्का महाशक्त्य है ।

जैन सिद्धान्तका नियम है कि—“नाणे पुण नियमा आया ।’

‘ज्ञानमें नियमते आत्मा है’

वदान्त भी यही कहता है कि—“प्रज्ञान ब्रह्म”

‘प्रज्ञान ही आत्मा है’

जैन कहते हैं कि—जन्ममृत्यु रूपक संसृति कर्मक द्वारा चलती है, और वे कर्म जड हैं । इन कर्मोंका नियामक आत्मा है । यानी आत्मा कर्मजन्य स्रष्टिका अधिष्ठान है ।

वेदान्त कहता है कि—ये जन्मादि मायाके द्वारा हैं, और इसका नियामक आत्मारूप ईश्वर है ।

जैन कहते हैं कि—कर्मोपाधिका प्रलय होनेपर आत्माका मोक्ष होता है ।

वदान्त कहता है कि मायोपाधिका प्रलय होनेपर आत्माका मोक्ष है ।

जैन कहते हैं कि—आत्माका मोक्ष होनेपर 'अपुणरावृत्ति' ससारमें पुनरागमन नहीं होता । अथात् आत्माको फिरसे जन्म मरणके चक्रमें नहीं आना पड़ता ।

वेदान्त कहता है कि—“न पुनरावृत्त” आत्माकी पुनरावृत्ति नहीं आता ।

गानाजाम भी शृंग चन्द्रजीने कहा है कि—“यद्गत्या न तिर्यन्त न ह्यम परम मम’

‘नहा गय याद् फिर आना नहीं पडता ।’ उही मरा परमधाम है । अथान् परमामाक धामको परमशाम कहत ह या मोक्ष कहत कहत है । अथा ज्ञानपर फिर वापस नहीं आना होता ।

जन कहत हैं कि—

एग आया’

आत्मा शून्य गुण पर्यायका दृष्टिम एक है ।

वेदान्त कहता है कि—

‘एगोऽहम्’

मैं एक हू ।

जेन कहत हैं कि—

‘तथा जत्थ ण पिहज्जइ मइ तत्थ ण गामिना’

तर्क आत्माक स्वरूप तर नहीं पडुच सकता, और मनि नस आत्माक स्वरूपको मरण नहीं कर सकता ।

वेदान्त कहता है कि—

‘यना वाचो निर्वर्तन्त अप्राप्य मनसा मह

जहासे वाणी वापस फिर जाती है । वह आत्म-स्वरूप मन द्वारा अप्राप्य है । भाग्यार्थ य है कि—मन और वाणी उस आत्मा का वगन नहीं कर सकत ।

जैन कहत हैं कि—आत्माको सम्पूर्ण या अखण्ड रूपमें जानने वाले मनुष्य कैवल्य ज्ञानको पात हैं।

वदान्त कहता है कि—

कैवल्यपदमस्तुन'

कवल्य पदमा अनुभव करता है।

वदान्त कहता है कि—अखिल विश्वमें सच्चिदानन्द परब्रह्म सर्वव्यापक है।

जैन कहत हैं कि—अखिल विश्वमें मारनसे मरता नहीं, जलानसे जलता नहीं, काटनेसे कटता नहीं भेदन करनेसे भेदित नहीं होता, और चर्मचक्ष द्वारा दीप्त नहीं सकता, ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप जीव स्वाभाविकतासे सघन रूपमें भर पड़े हैं। आकाश, पर्वत पृथ्वी, नक्षत्र आदि कोई भी स्थान जीवसे खाली नहीं है। अर्धान् चतन्य लक्षण युक्त जीवकी दृष्टिसे दरजन पर चैतन्यद्वय समस्त लोकमें भरपूर है।

वदान्त कहता है कि—आत्मा स्वय सर्वज्ञ है,

जैन भी यही कहत हैं कि—आत्मा अनन्त ज्ञानमय है।

वदान्त कहता है कि—ब्रह्म सनातन है।

जैन कहत है कि—आत्मा स्वय शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वरूप है और सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी है।

वदान्त और सांख्यवि भी यही कहत हैं।

दण्डभाष्यार्य मतप्रवर्तक कहत हैं कि—

निर्गोपपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो,

निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीन।

आनन्दमात्रस्वरूपादमुगोदरादि-

सर्वत्र च त्रिविधभद्विरभिजात्मा ॥

आत्मतन्त्र अर्थात् मात्र आत्म स्वरूप निर्दोष है। पूणगुण विग्रह है। पुन जडात्मक शरीर और गुणन भिन्न है। इस आत्म स्वरूपके हाथ, पैर, मुख, उदर इत्यादि अवयवोंकी कल्पना करन पर मात्र आनन्द हा अर्थात् सम्पूर्ण आनन्दमय मेऽ भाव रहित है। आत्म-तत्त्वर अवयवोंसे श्लोशर्म की गई कल्पनामें वरुण आनन्द ही इनके अग्रथ है। यह स्पष्टतासे समझमें आ जाता है। इस आत्म स्वरूपमें जन्म, जरा और मृत्यु रूपी भद नहीं है। उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय रूप त्रिविध भदमें यह आत्म स्वरूप भिन्न है।

जैन कहता है कि—निश्चय नयसे तो आत्मा अकृता ही है।

सांख्य शास्त्र कहता है कि—“अहंकार कृता न पुरुषः ।” कृता धना अहंकार है पुरुष नहीं, अर्थात् आत्मा बुद्ध नहीं कृता, प्रयुक्त अकृता है।

जैन कहता है कि—“ईश्वर सर्वज्ञ होता है, तथा उसमें राग द्वेष आदि भी नहीं है।

योग शास्त्र कहता है कि—“क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वरः ।” क्लेश कर्म, विपाकके आशयाक सग असंसृष्ट अद्विज है, वही पुरुष विशेष पुन्योत्तम और ईश्वर है यान्त ईश्वरको राग द्वेष क्लेश कर्मविपाक नहीं छू सकते।

‘तत्र सर्वज्ञवीजं ।’

उस ईश्वरम सन्नान्व होता है। आत्मा अनन्त तत्त्व रूप है।  
वेदान्त कहा करता है कि—

“सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म ।”

ब्रह्म स्वरूपमें पाप, पुण्य, सुख या दुःख नहीं है।  
पुन वेदान्त कहता है कि—

“न पाप न पुण्य न दुःख सुख न।  
चिदानन्दरूप शिवोऽ शिवोऽ॥

“मेरा आत्म-स्वरूप शिव है, और उस शिव स्वरूप आत्मामें  
पाप, पुण्य, सुख, दुःख नहीं है, क्योंकि वह सच्चिदानन्द रूप है।

जैन कहते हैं कि—अवलज्ञानी यहाँ ही मोक्षका अनुभव  
करते हैं।

इसीसे मिलता जुलता मत स्वामीनारायण मत प्रवर्तक श्री महजा-  
नन्द स्वामीका भी यही मत है कि—

‘अक्षरधाम यहाँ है, आत्मा स्वयं अक्षर स्वरूप है। जो आत्मा-  
को यहाँ लिये भी अक्षरधाम समझता है उसीकी ममक सही है,  
और जो अक्षरधामको किसी अन्य स्थल आकाशादिमें समझते हैं  
उनकी ममक मिथ्या है।

प्रणामीपथ अथात् स्त्रीजडापथ प्रवर्तक महाराज ठाकुर तथा श्री  
दबचन्द्रजी अपनी सम्प्रदायको निजानन्द सम्प्रदाय कहते हैं। इस  
दृष्टिसे दरनेपर पता चलता है कि—भारतके धर्मात्मा परमोंका  
सिद्धांत आत्मानन्दके पानेका ही है।

मुहम्मद साहब भी यही कहते हैं कि—जगन्में जो भी बुद्ध



चैतन्य प्रतीत होता है वह गुणकी रवागी है, गुण निरान निग  
कार, तजोमय और सर्वशक्तिमान् तथा सरश है। मोमिन ता  
कृपालु गुणकी अपन पास ही दग्गन है। गुणका अध भा गुण ही  
होता है। जिमिसमाइस्टका भी यही उपदेश है कि—चौथे आस-  
मानपर प्रभु पिराजमान है। वह प्रभु भक्तोका आत्मा है, और  
परम भक्त उस प्रभुकी प्राप्त करत है। अगिल भूमण्डलमें सर्वोत्कृष्ट  
कीर्तिको पानवाले बुद्धदम भी स्पष्ट कह गय है कि—प्रेम ही आत्मा  
है। अत जगत्क प्रत्येक प्राणीमें अभेद प्रेम रफ्तो।

तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे दया जाय, तो जैन दयान्त, योग, सात्व्य,  
बौद्ध आदि सब एकताका हा अनुभन करत है। एकता पानक  
लिय जथात् आत्मानदमें अभिवृद्धि करनेके लिये साधनोंको भिन्न  
भिन्न धर्म मीमासकोंने भिन्न भिन्न दश कालमें भिन्न भिन्न पद्धतिसे  
समझाया है। अतएव यहिदृष्टिसे दया जानपर उन मतोंकी  
क्रियाओंमें भेद जान पडता है। तथापि उन क्रियाओंका समन्वय  
किया जाय तो वे भेद भी अभेद भाव भजने लग जात हैं।

जैन जिस पांच महाव्रत कहते हैं, बौद्ध उन्हें पांच शील कहत  
है, और योगी उन्हें पांच यम कहत है। वेदान्तके शम दम,  
उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान भी ऐसे ही हैं। परमहर्मोंके  
वर्तन करने योग्य नियम भी अन्तमें एक ही हैं।

प्रत्येक धर्मके नीति, दया परोपकार, प्रेम आदिके सामान्य  
और सर्वमान्य नियम भी गृहस्थ धर्ममें समाजता तथा उपयोगिता-

का उपभोग करत हैं। सप्ततादि वैराग्यक लक्षण भी सन्ने समान रूपसे ही पाये जात हैं।

ज्ञानी पुरुषोक्ते वर्तावक्री ओर दृष्टि डालते हुए जैनोना यनाउ  
“मित्तिमे सब्ब भूएसु” सत्र प्राणिओउ साध मित्रता अथात् समान  
भाव ररपना चाहिये। न्यूनाधिक न होना चाहिये। वद भी कहता  
है कि —

“मित्त्रम्य चक्षुषा पश्यामह।”

‘सत्रको मित्रकी दृष्टिसे दरपना चाहिये।’

‘आत्मरत्तसर्वभूतेषु’ ज्ञानी पुरुष अपनी आत्माके समान सत्र  
जीवोको दरपन है।

वेह मीमासकोंकी तरफ दृष्टि डालनपर जैन मुख्यतासे, औदा-  
रिक, तैजस, कार्मण शरीर कहत हैं।

इसी प्रकार वेदान्ती भी उन ही शरीरोंको स्थूल सूक्ष्म और  
कारण शरीर कहते हैं। जैन जिसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और  
उजागर या तूयाग्रस्था मानते हैं, उन अस्वथाओंका वर्णन वेदान्ती  
भी उसी प्रकार करते हुए सन्तोष प्रगट करते हैं।

समृति मीमासकोंके कर्नको दरपने हुए जैन यह कहते हैं कि—

“परिणामो ग्रन्थो परिणामे मोक्खो।”

“मनर परिणामसे ही बध और मोक्ष है।”

वेदान्ती संकल्पसे सृष्टि मानत हैं।

जैनोंका मानमिक अध्ययमाय और परिणाम तथा वेदान्तरा  
संरल्प एक ही बात है।

इन प्रमाणों से आत्मानन्दकी अभिवृद्धि के साधनों का यानी धमाका समन्वय करते हुए व सत्र अमर भारत प्रत्यक्ष समाये हुये गये हैं। साधन अमर होने से साध्य आत्मा भी प्रत्यक्ष अमर ही समझा जाता है, और अनुभव भी यही आता है। अतः प्रत्येक मुमुक्षु जीवने प्रत्येक जीवने प्रेम भाव रखना चाहिये, और सत्र चरणों में ही सत्र मेरा ही स्वरूप है यही पाठ पढ़कर अमर प्रेम रखना चाहिये। हलने, चलने उठते, बैठते, रात, पीने इत्यादि सत्र क्रियाओं में शुद्ध चैतन्य आत्म स्वरूप ही यही भावना रखनी चाहिये। इतना ही नहीं, बल्कि—जगत् सत्र भूत भी मेरे ही स्वरूप हैं। यह जानकर उनसे प्रति अभेद प्रेमकी धर्या करनी चाहिये। इस प्रकार जो पुरुष सत्र जगत् पर अभेद भाव रखते हैं, व हा धीतराग हैं पूर्ण हैं, और शून्य हैं। धन्य उस धीतराग देवने हैं कि जिसने निष्पक्षपातसे ऐसा सुन्दर अमर माग जगत् के कल्याणने लिये निस्वार्थ भावसे प्रगट किया है। जोकि स्वतन्त्रताका दूसरा द्वार है।

# योग



प्रत्येक प्राणी मुखकी इच्छा प्रगट करन है, इतना ही नहीं बल्कि मुखकी प्राप्तिके लिये अनेक उपाय करते हैं, उन उपायोंसे जत्र नह सफलीभूत होता है और अनन्त मुखको पाता है तब वह सर्वथा वृत्तवृत्त्य हुआ समझा जाता है, मुखको पानके लिये अनेक साधनों-में धर्म सर्वतो मुख्य साधन है, वर्तमान समयमें जो अनेक मत, पथ, वाडानदी सम्प्रदाय, मघाड़ा, गच्छ, टोला, पार्टीवाजी आदि जो धर्मक नामपर चलकर अमर शहीद बनने जा रही हैं, वे सब मुखके साधनसे विमुख बनकर व अपने शिष्योंको मुखका साधन प्राप्त करानेमें असमर्थसे ही हैं। मात्र अपनी सम्प्रदाय और टोलेको निभानके लिये अमुक अमुक क्रियाएँ रच डाली हैं। उन्हीको परम्पराके अनुसार अपन शिष्योंको भी बताने रहते हैं, और वे शिष्य भी उस परम्पराके अरघट धनके अनुसार उन क्रियाओंको उत्तम इशारपर नाच-नाचकर करते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें जो क्वचित् क्वचित् मुखकी इच्छावाले प्राणी हैं उनको सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होनेसे ऐसे भद्रपरिणामवाले जीवोंको मुखके साधनके लिये खून पसीना एक करना पड़ता है। बहुत कुछ धूल राक उडानपर भी मुखके सच्चे साधन समयपर मिलते हैं और नहीं भी मिलत। इस प्रकार उनकी दयनीय स्थितिपर स्पष्ट समझा जा सकता है कि स्थायी

सुख वास्तविक और सच्चे साधनों प्रचार करनेका जगत्की पूरी आवश्यकता है।

सुख साधनाम योग सशम भाग और अद्वितीय चमत्कारिक तथा सर्वमान्य साधन है। यदि इन साधनोंका गुग्गम द्वारा उपयोग किया जाय तो अवश्यमेव अल्प समयम सनातन अमृत सुखकी प्राप्ति हो सकती है। योग एक ऐसा वस्तु है कि वह अपन आप नहीं सीता जा सकता, अत किसी महात्मा, योगनिष्ठ, आत्मविन् पुरुष द्वारा उस सीखना चाहिये। आजकल योगी पुरुष इस भारतम सब जगह नहीं मिलने अत सन् प्रयास द्वारा योगियोंकी शोध करनी पड़ेगी, परन्तु नरुली योगियोंसे तो सावधान ही नहीं बल्कि र रहना चाहिये और किसी सच्चे योगीको रोजकर साध्यकी साधना कर ली जाय। परन्तु इतना ध्यान रहे कि योगकी साधनाके विना सत्य सुखकी कोई भा नहीं प्राप्त कर सकता, परन्तु यह सत्य सुख अपन पास और अपनी आत्मामें ही है, और योग अर्थात् द्विक अभ्यास द्वारा उस वला सकता है। जिस मनुष्यको सनातन सुख अभीष्ट हो उस योगकी साधनामें लगना चाहिये। योग और योगीकी महत्ता यन्ही हा उची है। श्री गीता भगवतीम श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है कि—

तपस्वीभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक ।

कमिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भयाजुन ॥

( अध्याय ६, श्लोक ४७ )

1. भाग्यार्थ—उपवासादिक अनेक प्रकारके लभ्य लभ्य तप करने-

वालोसे योगी बड़ा है। नय, निश्चेष, दयादिकी आयुष्यके भग (भाग)े  
नया जीनादिकी सराकी गणना करनेवाले वाचाल ज्ञानियोंसे भी  
योगी बड़ा है, आवश्यकतादि कार्य करनेवालेसे भी योगी बहुत बड़ा  
है। अतः ह अर्जुन । तू योगी बन ।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा चितन्द्रिय ।

सर्वभूतात्मभतात्मा, बुर्ध्वत्रपि न लिप्यत ॥

( गीता अध्याय ७, श्लोक ५ )

भावार्थ—आत्म-विजेता, इन्द्रियजित् और सब भूतोपर समभाव  
रखनेवाला, योगी पुरुष कर्म करनेपर भी निष्कर्मा समझा जाता  
है। अथात् कर्म लेपसे लिप्त नहीं होता।

इसी प्रकार जैन दर्शनमें भी कहा है कि—

“अग च मूलं त्रिलं च त्रिणिं च धोर ।

पलिच्छिन्दियाणं निष्कर्मदसी ॥”

( आचारांग )

अप्रकर्म और मूलकर्मक भेदको समझ कर विवेक द्वारा कर्म  
कर । इस प्रकार कर्म करनेपर वह साधक निष्कर्मा कहलाना है ।

अकम्मस्स वरहारो ण विज्जइ ।

कम्मणा उपाहि जायइ ॥

( आचारांग ३-१-३ )

भावार्थ—निष्कर्माक जीवनमें उपाधि या उत्पत्ति नहीं होता ।  
इसी प्रकार लौकिक टीपटाप और दिखान बनान भी नहीं होता ।  
इसका शरीर मात्र योग क्षेत्रका वाहन होता है । इत्यादि ।

यह योग अनादि कालम चला आ रहा है, और इसके आदि प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् आदि नाथंकर श्रीकृष्णभण्डारी जिनराज हो गये हैं। उन्होंने मनो निग्रह आदि सत्र प्रथम कर यह कहाया है कि अधिकतर बहुतसे जोरोंका जगाने सम्मुख दृष्टि द्वारा क्षोभ प्राप्त मन अशुद्ध होकर आत्माय सम्मुख प्रवर्तित होना है, और वह फिर अनन्त सुखका साक्षात्कार पाने उसका अनुभव करता है अतः मनका निरोध करना ही योग है। भगवान् पतञ्जलिने भी योगका यही उद्देश्य बताया है।

‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।’

‘चित्तवृत्तिना निरोध करना योग है।’

इस अत्युत्तम योगके पात्र स्त्री पुरुष या चारों वर्णके लोग हैं। योग साधनामें चाति मदका कोई आवश्यकता नहीं है। चाण्डाल जानि भी योगा महात्मा हो सकता है। २५०० वर्ष पूर्व हरिश्चन्द्री मुनि चाणिक चाण्डाल थे तथापि योगक द्वारा महात्मा पदको पा गये थे।

सावागपुत्रसंभूओ गुणनरधरी मुनि

( उत्तराध्ययन )

भावार्थ—चाण्डाल कुलम जन्म लेनेपर भी हरिश्चन्द्री मुनि उच्च गुणक धारण करनेवाले मुनि थे।

सक्यं तु दोसइ तयोविसेसो  
न दोसइ जाइ विससु कोइ।  
सौवागपुत्रं हरिणससाहु,  
अस्सरिसा इहिंढ महाणुभागा ॥

( ३७, उत्तराध्ययन १२ )

“योगका महात्म्य आर्यों आगे प्रत्यक्षमें दीख पड़ रहा है जिसमें जातिकी कोई आवश्यकता विशेष नहीं है। हरिकेशयोगी चाण्डाल जाति है। परन्तु इसका योग श्रुद्धिक सामने सनकी आर्य चौधिया गई है।

परन्तु तामस वृत्तिवालोंसे योग साधना नहीं हो सकती। अतः योग विद्यार्थी जिज्ञासुओंको घी, दूध, तेल, प्राणुक भोजन आदि सात्विक आहारका उपयोग करना चाहिये।

आसत्त्वयुत्तरोग्यसुखप्रीति विवर्धना,

रम्या क्षिप्वा न्यिरा हृद्या आहारा सात्विका प्रिया ।

( गीता श्लोक १७, अध्याय ८ )

रसयुक्त, चिन्ना, स्थिर हृद्य आहार सात्विक जनोंको प्रिय है, क्योंकि इनसे आयुष्य, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है।

परन्तु अधिक मिरचें, अति तेल, अति खटाई आदि तामसी पदार्थोंका उपयोग न करना चाहिये। इसका उपरान्त आवश्यकतासे अधिक न धोलकर अधिकांश मौन रहना चाहिये। निकम्मा वाग् ध्वय करनेसे योगमें विकार आ जाता है। योग साधना करनेवाले महात्मा पुनःपासे पाससे योगकी तालिका सीखकर उसकी साधना करनेके लिये एकान्त तथा पवित्र विचन प्रदेशमें जाना चाहिये। पहाड़ पर्वत आदि एकान्तप्रदेशके अतिरिक्त अन्य किसी स्थानमें जैसी चाहिये वैसी अच्छी रीतिसे योगकी साधना नहीं कर सकता। इसीलिये प्राचीन कालके पुरुष अनेक पहाड़ोंमें जहां नाना सात्विक वनस्पति होनेसे



तथा वहाँ अनेक महात्माओं का गुड रण रण हातरी स्मृति रहनम, वातावरण भी पकान और पवित्र रहनेसे कम स्थलपर एकदम शांत और अचपल मन हो जाता है। अतः यह स्थान उनका मनपसंद है। बड़े राजमहल या धर्म स्थानमें जिस आनन्दका स्वप्न भी अनुभव न हुआ हो उस आनन्दका अनुभव एन्तु और शिमले तथा हम नीधक घर्कनी पहाड़ोंमें जानस होना है। अतः योगीको जिमा इस प्रकारका स्थान पसन्द करना चाहिये। यदि कारणसे इन स्थानोंपर न जा सके तो जहाँ तक अपनी ही वस्तीमें रहना हो उनके आसपास किसी रमणीक वनस्पतिवाले उपवनको चुनना चाहिये, और वहाँ योगाभ्यास करना चाहिये। धूलपर बैठकर योगकी मधना नहीं को जा सक्ती घन्कि बैठनेके लिये आसनकी भी आवश्यकता है।

योगीओंके लिये दभामन अत्युत्तम है, और दभामनपर कर्मभ्यासन प्रिदाना चाहिये। दभामन तथा कम्बलसतमें साधकक शरीरकी शक्ति विद्युत्को टिकाये रगनेकी शक्ति बड़ी हो गतम है। इमीलिय सूत्रक कपडपर योगी अपन योगभ्यासकी साधना न कर।

भगरनी आदि सूत्रोंमें भी कई स्थानोंपर दभामनका पाठ ही किया गया है।

“असधारण सधरइत्ता।”

इमाकी पुष्टि लिये उत्तराख्ययनम कशा मुनि और गौतम गणधर जहाँ मिलते हैं वहाँ व आगन्तुस मुनिका स्वागत “युसा तणाणिय” दभामक आसनस करते हैं। इमस स्पष्ट सिद्ध है कि—जैन जानिम का एक मंत्र दभामनका ही रिवाज था।

दभामनसे अभासमे कबलासन विद्याना चाहिये । दभामनके ऊपर कबलासन विद्याकर उसपर पद्मामनसे मन पसंद आसन ल्या कर तथा स्थिर होकर पूर्व या उत्तरमे मुख करके बैठना चाहिये । सृष्टीमे पद्मासन लगाकर पूर्वमे मुख करना बताया है ।

पुरत शभिमुद्' नपन्थिकनिम णे''

पर्यङ्गासन-पद्मासनसे बैठकर पूर्वमे मुख रखते । पद्मासन लगाकर दाय हाथकी हथेलीपर दाहिना हाथ सीधा रखकर, कमर, गर्दन, मस्तिष्कको एक पच्छिमे रखकर बैठना चाहिये, और दादाको हसलीसे चार तसुक अन्तरपर रहने द । इस आसनसे सतर साक या मन्त्राहमे तथा रात्रिके पहले और पिछले पहरमे सतत अभ्यास करना चाहिये । एक पहर यदि आगमसे स्थिर होकर बैठ सत सत समको कि—आसनपर विजय प्राप्तकर ली गई है । आसनपर विजय पानक राद प्राण और शरीर तथा दृष्टिपर विजय पाना चाहिये । परन्तु आसनपर विजय पाये बिना योग निष्ठ नहीं हो सकता । इमने बिना आत्म-साक्षात्कार अथात् सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः सतत प्रयास द्वारा सुखगमसे पाई हुई बुक्तिके अनुसार आसनपर जय पा लेना चाहिये । आसनक जयमे यम और नियमपर जीत प्राप्त करनी चाहिये ।

आसनको जीतनक पश्चात् साधकजन अनेक प्रकारकी क्रियाएँ कर सकता है । परन्तु आसनको जीतकर दृष्टिको जीतनकी पूर्ण आवश्यकता है । दृष्टि जयका पहला लक्षण आसना न मीचना है । उससे मेपोन्मेप दृष्टि हो जाती है । योग परिभाषामे इसे

प्राटक बना जाता है। सूत्रोंमें भा मेपोन्नेप रहित होनेय वह जगह प्रमाण मिलत हैं।

दृष्टिको जीतनय लिये या प्राटक मुद्राको सिद्ध करनय लिये सर और मामर्म साधकको यथेऽ आसनपर बँठकर अपनेसे महा हाथके अन्तर पर किसी रुईकी गालीको बनाकर रख दना चाहिय और उस बने जितनी गोलीपर दृष्टि जमाये रहो। अमुक समयन अनन्तर आत्ममें पानी आयगा। आरभर्म आम् आनेपर प्राटक रोक दना चाहिय। चार या आठ दिन तक आंसुओंको पोंछते रहना चाहिय, और प्राटक आरभ रखना चाहिये। प्रयास ऐसा करना चाहिये जिसस पलक बन्द न हा सक, और इस प्रयासमें शान्तिपूर्वक प्रति दिन वृद्धि रखना चाहिये। जब एक घडीने अधिक पलक जीत लोग तब वह नवीन बातोंके अचरज साधक स्वय दखने लगेगा, और ज्यों ज्यों इससे भी अगाड़ी बढ़ेगा त्यों-त्यों उस साधकको बलौकिक आनन्दकी अश अशमें प्राप्ति होगी। ज्यों ज्यों दृष्टिको जातता जायगा त्यों त्यों उमरन मन ज्ञान होता जायगा और दृष्टिके जयमें मनकर भी जय होता है। अधिकतर आँसुकी भरोंपर दृष्टि रखना इसीलिये सूत्रोंमें भी बताया है।

“एग पोगलनिबिदृदिष्टि।”

“एक पुटलपर दृष्टिको स्थापना करद।”

इस प्रकार ध्यानकी प्रक्रियाएँ महात्मा पुरुषोंके पास सीखना चाहिये। जब एक घटा तक दृष्टि विजयका अभ्यास हो जाय

तदनन्तर सायकको चाहिये कि—दिनके पहले भागमे किसी सुन्दर पहाडने शिखरपर या वृक्षकी छोटीपर दृष्टि जमाना चाहिये । रात्रिमे चान्द या शुक्र तथा मंगल तारेपर नजरको जमाना चाहिये । यह प्रयास ज्यों ज्यों बढेगा त्यों त्यों प्रकृतिने प्रत्येक पदार्थकी ओर पवित्र प्रेम उत्पन्न होगा, और सृष्टिने प्रत्येक अशमे वीतरागताका प्रकटीकरण होगा । परन्तु यह प्रयाम भी एक घटा तक रखना । इसके अनन्तर सृष्टिके चाहे जिस भागपर दृष्टि डालोगे तत्र एकदम वह वही स्थिर हो जायगी, और शरीरक कोथलेमेंसे दुःख निकल कर भागेगा, इस कक्षापर पहुचनेपर साधकको तुरन्त प्रभु नामका भावना नामक जाप परम प्रेम पूर्वक शुरू कर देना चाहिये । आपमें इच्छा-नुमार शब्दोच्चार या 'नमो अरिहताण' जपना चाहिये । परन्तु बुद्ध समयके पश्चान् नमो पद आपसे आप उड जायगा, और आत्मा अर्हन् प्रभुमें एकाकार हो जायगा । प्रति समय यथावसर पाकर हिलने, चलने, उठन, बैठन, सोते, जागते वह ध्यान दिमागसे न निकल सकेगा । माक, सपेर मध्यान्ह और रात्रिमें योगकी क्रियाका आरम्भ रखकर जाप जपते रहना । एक ओरसे योग क्रिया द्वारा सद्भावनाकी दृष्टता और दूसरी ओरसे जाप, इन दो साधनोंके मिलनेसे मन एकदम शान्त हो जायगा । क्योंकि—मग्नो साहसिओ भीमो, दुद्रुस्सो । मनरूपी घोडा साहसिक और भयकर दुष्ट है ।

“इन्द्रिय खवल तुरगो”

मनका घोडा—या इन्द्रियोके घोडे अधिक बलवान होते हैं, परन्तु इस प्रयाससे उनकी मस्ती निकल जानी है, और वे

शान्तिमय हो जाते हैं। इस प्रकारके संयोगोंमें सायककी विकृत दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टि हो जायगी तथा साथ साथ आनन्दकी वृद्धि भी। यह साधना सन्तोष जनक होनेपर माधकको अपन योगकी दिशा घटल दनी चाहिये। अर्थात् जो धाक कहिर्दृष्टि किया जाता था उस स्थानपर अन्तर्दृष्टि घाटक करना चाहिये। प्रथम श्वासोच्छ्वासमें दृष्टि रखनी चाहिये। और जो श्वास बाहर आता है तब भी और अन्दर जाते समय 'ह' का कुन्तरी ही उधार होता है। तब दोनों मिलकर "सोह" अजपाजाप बिना ही जपे होता रहता है उसपर ध्यान दना चाहिये। अर्थात् श्वास जहास उठता है और जहां जाकर समा जाता है वहां तक उसके अन्दर वृत्ति रगनी चाहिये। इस प्रयासमें एकदम शान्ति होने लगेगी, और अन्तरके आनन्दमें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगेगी। दिनरातमें सामान्य रीतिसे ११६०० श्वासोच्छ्वास चलते हैं। उनमेंसे उपयोग विनाका एक श्वास भी न जान दना चाहिये। 'सोह' के जापका सन्तु प्रयास होनेके पश्चात् सहज-वृत्ति श्वासमें रहने लगेगी है। आत्मामें इस प्रकार श्वासका ध्यान सिद्ध होनेपर सायकको हृदयके मध्य भागकी वृत्ति स्थिर करनेका प्रयास करना चाहिये। जब हृदयकी वृत्ति स्थिर होगी तब हृदयमेंसे अलौकिक शान्तिका घात प्रगट हो जायगा। जिस शान्तिका साधकको अब तक इससे पहले किसो न पास अनुभव नहीं हुआ था। जब हृदयका ध्यान सिद्ध होता है तब नामीय एक दशमें वृत्तिको स्थापन कर। वहांकी सिद्धि होनेपर उसे पुन

हृदयमें ले आना चाहिये, और वहासे कठक मध्यमें ला छोड़े। नाभि, हृदय और कठमे शान्तिका अनुभव होनेपर मनोवृत्तिको त्रिकुटी भवनमें स्थापन करे। त्रिकुटी ध्यानका प्रयास होनेपर और वहाकी स्थिरवृत्ति होनेपर मसूरकी दाल जितने एक त्रिन्दुका साक्षात्कार होता है, और वह त्रिन्दु अतिशय चमकदार होता है। त्रिन्दुक दर्शन होनेपर साधकको अपार आनन्द मिलता है। उस नाद-त्रिन्दुके दर्शन होनेपर सिद्धियां भी साधककी सेवामें उपस्थित हो जाती हैं। कपालमें अखिल विश्वकी भांगी हो जाती है। इसका कारण यह है कि—उस स्थलपर त्रिकुटीमें गोल विन्दु दर्शन ही हैं, और वह चांदकी निशानी द्वारा विन्दु दर्शनके रूपमें समझाया गया है। विन्दु दर्शन होनेपर साधकको अलौकिक ज्ञानकी प्राप्ति होती है, और जन्म जरा मृत्युक विनाशकी तैयारी हो जाती है। विन्दु दर्शन ही शंकरका (आत्मानंदका) तीसरा नेत्र है। प्रत्येक आत्मा शंकर ही है, और उसके समानतया दो नेत्र तो है ही, और तीसरा विन्दु दर्शन रूप ज्ञानलोचन प्रयास द्वारा उघड़ता है, विन्दु दर्शकके पश्चात् योगीको मृत्युका भय नहीं हो सकता, और साधकके संशय शल्योका नाश हो जाता है। इसीको समझनेके लिये कहा जाता है कि शंकरका तीसरा नेत्र उघड़ आता है। तत्र संशय शल्यरूप विश्वका प्रलय हो जाता है।

त्रिकुटीमें त्रिन्दु दर्शन होनेपर साधक 'ज्यो-ज्यो' विशेष प्रयास करता है त्यों-त्यों वह त्रिन्दु विशेष प्रकाशित होने लगता है, और अन्तमें साधक उस विन्दुमें इतना मिलीन हो जाता है कि—उस

शान्तिम उसे नाटक अनुभव होन लगता है। तब विन्दुकी अपक्षा नाट्य विशेष आनन्द मानसे रिदु गीण होने लगता है, और नाद निशपानिविशेष ध्रुणगोचर होन लगता है। नाद भी अनक तरह सुनाई पडने लगता है, और बद् धकी सिनार, सरगी और मौख-र्यानस भी अधिक और उल्टु होना है। मेपकी गर्जनास भी अधिक गजना सुनाई दन लगती है। अन्तमें दिव्य नाट्य अनुभव हानपर साधक उस नादमे अत्यधिक लीन हो जाता है। इस ध्वनिका अनुभव इतना अधिक बढ जाता है कि—साधककी हिलने, चलने, उठन, बैठने आदिकी क्रियाओंमें भी नादका धनुसन्धान रहा करना है। नादके अनुभवसे ही जगन्में संगीतका प्रचार योगी लोकोंने किया है। जिस प्रकार नाद साधकको प्रिय है उसी भाति जगन्को सगीत प्रिय है। अतः सगीत (शुणगान) द्वारा मनको एकाम बनाकर साधकजन धाम बढ सकत हैं। वास्तवमे सगीत बाह्य नाट्य हो गया है, और इस बाह्य नाद द्वारा अभ्यन्तर नादको मिलानर पाया जा सकता है। साधक जब नाट्यमें और भी आगे बढता है, तब उसको नादका अनुभव जहा होता है यह ध्रुमर गुफाके उपर एक पोली शडुके आकारकी प्रतीत होगी, और उस पोलके शिगरपर एक महान प्रकाशवाले पन्थका अनुभव होगा। यह प्रकारमान पन्थ गोलाकार और उल्टे छत्रके आकारकी तरहका जान पड़गा। यह छत्राकार सहस्र दल कमल सिद्धशिला रूप अजरामर चक्र शिरवे ध्रुमभागमें—लोकके ध्रुमभागपर है। इस अजरामर चक्रमें वृत्तिव विली होनेपर साधकको अरण्य अलौ-

किमय आनन्दना अनुभव वर्धमान रूप होता है। वह आनन्द बढ़ता भी इतना अधिक है कि—साधक योगी उसमें एकदम लीन हो जाता है और अलौकिक आनन्दका अनुभव अपने उस समस्त शरीरमें प्राप्त करता है। अथात् स्वयं जो आनन्द रूप है उस अलौकिक आनन्द स्वरूपको स्वयं सर्वाङ्ग अनुभव करने लगता है। इस अवस्थामें वह साधक रूपसे मिटकर सिद्ध, योगी, विदेही, महात्मा जीवन्मुक्त कहलाता है। इस योगीकी दृष्टि देहसे अन्य स्थलपर जहां जहां जानी है वहां वहां वह अलौकिक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है। जलस्थान, स्थलस्थान, राजस्थान धनिकुस्थान, पशु-स्थान आकाश स्थान आदि जिन जिन स्थानोपर उस महात्माकी दृष्टि होती है वहां वहां यह आनन्दका ही अनुभव करता है। सब जगह अमेद रूपसे अलौकिक अनुभव करनेसे—द्वैत भावकी भ्रांति न रहनेसे वह वीतराग कहलाता है। ऐसा योगी पुरुष ही कृत्यकृत्य और सिद्ध है। ऐसे योगीक दर्शन भी जगत्को पावन करते हैं।

जिस प्रकार अम्यन्तरवृत्ति द्वारा हम योगसे सम्यन्धमें समन्त सके हैं। उसी दृष्टिसे बाहरके भागमें नाभिपर ऊपर स्थापन करनेमें आता है, और जब उस प्रयासमें नाभि और चक्षुः शीर्षमें एक चमकनेवाली तेजस्वी लकीर अखण्डरूपसे दीपने लगे तब नाभिसे दृष्टि हटाकर छातीके मध्य भागमें स्थापन करनी चाहिये, और वहां भी जब इसी भांति तेजस्वी लकीर भासने लगे तब नासिकाके अग्रमें स्थापन कर। नासाग्रसे त्रिकुटीमें, वहांसे भ्रमर गुफामें होत हुए अजरामर चक्ररूप सिद्ध-शिलामें और वहांसे अनुभवमें पहुंचा जाता है।



इस अनुभव मार्गमें भक्ति है, वह एक महान साधन है, भक्तिमें प्रेम प्रगट होता है, और प्रेम के द्वारा भी आत्मा का मार्ग प्रदर्शित हो सकता है। किसी शास्त्र के श्लोक पर विचार करते करते गभीर तर्क उत्पन्न होता है और उससे द्वारा भी आगे बढ़ सकता है।

एक जगत् भी रीति है जिसमें पश्चात्तम से बैठकर जो विचार आते उनसे तटस्थ बैठकर दृष्टा कर, परन्तु विचारोंको अटकाने न दें। अभ्यास के प्रथम प्रयत्नमें विचारधारा स्वयं ठंडी पड़ने लग जाती है, और अन्तमें एकदम शान्त हो जाती है। विचारों के शान्त होने पर साधकको अलौकिक आनन्द होने लगता है। तब अखिल विद्वत् पर विशाल प्रेम की दृष्टि हो जाती है। समान भाव को मयम करने लगता है। अपने आपमें इतर भावका उत्पन्न होने लगता है। ज्यों ज्यों यह प्रयास बढ़ता है, त्यों त्यों अन्तरमें आनन्दकी विशेष जागृति हो जायगी। इतना ही नहीं, बल्कि बाहर भी सब जगह आनन्दका ही अनुभव होने लगता है। और अन्तमें वह पूर्ण आनन्दमय बन जायगा। सब जगह ईश्वरभावको स्थापन करता हुआ धर्म प्रेममय धारक, प्रेमकी दृष्टिमें विद्वत्ता दिन रात अलोकन करनेसे सम्मानित प्रगट होता है, और वातराग हो जाता है।

पहले कहे गये प्रमाणानुसार साधक के लिये थोड़ी सी प्रक्रियाएँ संश्लेषमें बनाई गई हैं। इन्हें विचार पर तथा नसी प्रचार मनन करनेसे अवश्य अलभ्य लाभ होगा। तथा अपरिमित सामर्थ्य पा सकेगा। योग का विषय अत्यन्त विशाल और गहन

है, और इसे गुग्गमकी माथी बिना सीख भी नहीं सकता। हठ-योग, मन्त्रयोग, लययोग और राजयोग इस भाति योग चार प्रकारोंमें विभक्त है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योगक आठ अंग हैं, और इनमें प्रत्येकको उत्तरोत्तर एकको एककी अपेक्षा है। प्राणायाम कई प्रकारोंसे हो सकता है, परन्तु उनमें पूरक, कुम्भक और रचक मुख्य हैं, भस्त्रिका आदि प्राणायाम भी उपयोगी हैं। प्राणायामको सहायता देनेके लिये नति अर्थात् नाकमेंसे डोरा पिरोकर मुरझदारसे निकालना, तथा धोती, अर्थात् कपड़ेको पेटमें उतारकर मलका निकालना, नौली अर्थात् नलोंका घुमान्दर फिराना, वस्ति यानी गुनासे मल साफ करना, तथा कपालभाति, गजकरणी आदि हठयोगकी अनेक क्रियाएँ होती हैं। इसी प्रकार रेचरीमुद्रा, महाबन्धमुद्रा, वज्रमुद्रा इत्यादि मुद्राएँ गुग्गमक बिना न कर सकनेके कारण प्राणायाम आदि की बात फिर धनाई जायँगी, क्योंकि वे वस्तुएँ भी विशेष क्षेत्ररूप हैं। अतः महात्मा पुरुषोकी सगतिमें रहकर सीखना चाहिये। योगसे घटकर ससारमें कोई अन्य विद्या उत्तम नहीं है। जो पुरुष योगकी साधना करेगा अन्तमें वे परमपदको पायेंगे, और कर्मासे मुक्त होगा। अतः उनको कर्मवन्धके चार प्रकार समझना चाहिये जो कि निम्नांकित हैं।

### कर्मवन्धके ४ प्रकार और दुःख सुख

इस समय अनेक मनुष्य अनेक पाप करते देखे जाते हैं तथापि वे सुखी क्यों हैं ?

उन्होंने पुण्यरूपी धीन धोय थे, इसीलिये आज व उनका सुखरूप फलोंको खा रहे हैं, परन्तु इस समय अन्य जीवोंको दुःख दकर पापक धीज्र धोत हैं इससे भविष्यमें इसका अनन्तर उनका फल उन्हें दुःखरूप होगा। इस प्रकार जो मनुष्य सुखी होकर भी पापाष्ट होता है वह मनुष्य “पापानुबन्धी पुण्यवान्” समझा जाता है। इसीलिये कि—इस समय पूर्वपुण्यके कारण सुखी है और वर्तमान पापके कारण भविष्यमें दुःखी होगा।

कितने मनुष्य धर्मी होते हैं अच्छे कार्य करते हैं पुण्य भी करते हैं तथापि दुःखित क्यों है ?

इसका कारण यह है कि पहले उन जीवोंने पाप किये थे, अतः वर्तमानमें दुःख भोगत हैं, इतनेपर भी शुभ कार्य करते हुए इस समय पुण्य राध रहे हैं। अब वे आगे सुखी होंगे। ऐसे मनुष्योंको शास्त्रमें ‘पुण्यानुबन्धी पापी’ कहा है। इसीलिये कि भूतकाल पापक कारण दुःख भोग रहे हैं, परन्तु वे वर्तमानके पुण्य कार्यक द्वारा भविष्यमें सुख भोगते।

तब क्या वर्तमान कालमें कोई मनुष्य दुःखको भोगता हो और उस भविष्यमें भी दुःख भोगना पड़े तब क्या ऐसा भी कोई नियम है ?

हां हा क्यों नहीं बहुतसे मनुष्य पूर्वके पापक कारण इस समय दुःखोंको भोगत हैं इतनेपर भी इस समय अन्य जीवोंको दुःख देने हैं तो व अगले जन्मोंमें भी दुःखी हा होंगे।

ऐसे मनुष्योंको शास्त्रमें क्या सजा बताई है ?

व ‘पापानुबन्धी पापी’ अर्थात् पूर्वजन्ममें पाप किया था

उसका फल तो भोग रह है, और इस समय पाप करते हैं उसका दुःखरूप फल भी भोगेंगे ?

तब क्या यह भी हो सकता है कि इस समय सुखी हो और आगे भी सुखी ही रह ?

हां यह भी हो सकता है, भूतकालमें जीने अन्य प्राणियोंकी सुख दकर पुण्य धांधा है, वे अब सुखी हैं, और अब पुण्य नांधकर भविष्यमें भी सुखोका ही उपभोग करगे ।

ऐसे पुरुषको शास्त्रमें क्या कहा है ?

इमें 'पुण्यानुबन्धी पुण्यवान्' कहा है, क्योंकि पहले पुण्य करनेसे अब सुखी है, और वर्तमानमें पुण्य करता है जिससे आगे भी सुख ही पायगा ।

**सार**—यों कर्मों चार प्रकारक अनुग्रह होते हैं, अनुग्रह का अर्थ वह वध है जिसका फल आगे भोगा जाता है । अच्छा अनुग्रह होनेपर अगाडी सुखोंका उपभोग करगा । अशुभ अनुग्रह हो तो अगाडी दुःख भोगना पडेगा ।

( १ ) 'पापानुबन्धी पाप' इस समय दुःख और पीछे भी दुःख ।

( २ ) 'पापानुबन्धी पुण्य' इस समय सुख और पीछे दुःख ।

( ३ ) 'पुण्यानुबन्धी पाप' इस समय दुःख और फिर सुख ।

( ४ ) 'पुण्यानुबन्धी पुण्य' इस समय सुख और फिर भी सुख ।

इस प्रकारके कर्मोंसे या तो दुःख मिलता है या सुख मिलता है, परंतु मोक्षक अव्यानाय सुख जो कि कभी समाप्त नहीं होत, ऐसा

आत्मिक सुख पानेके अर्थ शारीरिक सुखोंका भोग छोड़ना चाहिये । अथान् पाप पुण्यका क्षय करके आत्म स्वरूपम रहना सीखिये, और किसी भी प्रकारका अनुभव न बाधना चाहिये । यदि अनुभव डालना ही हो तो पुण्यक ही बाधना चाहिये । पापका अनुभव तो मिल्कुल ही न डालना चाहिय क्योंकि पुण्यक अनुभवसे बुद्ध णमा धल प्राप्त कर सकता है कि जिससे कर्मोंका क्षय भी कर सकता है ।



# भावावश्यक



## मंगलाकरणा

( सम्पूर्ण जीवन मुक्त )

नमो अरिहंताण—अरिहत दोषोंके लिये नमस्कार—  
स्वकृत कर्मरूपी आत्मिक शत्रुओको नष्ट करके आत्मासे पृथक्  
करनेवाले—चार कर्मोंका क्षय करनेवाले—और चार कर्मोंको क्षय  
करनेमें तैयार रहते हुए उनको पतला करनेवाले ।

( मुक्त )

नमो सिद्धाण—मिद्ध भगवान्के लिये नमस्कार—सम्पूर्ण-  
तया कर्मोंका नाश करके—जन्म, जरा, मरणका सम्बन्ध जड़ मूलसे  
तोड़कर नष्ट करनेवाले—देहादि सम्बन्धको छोड़कर स्वयं ज्योति  
स्वरूप अपुनरावृत्ति—अवस्थाको प्राप्त करनेवाले ।

स्वमार्गका उपदेशक

नमो आचरियाणं—आचार्योंके लिये नमस्कार—स्वयं  
उत्तम आचार पालक—आत्म-स्वरूपमें रमण करनेवाले,—और  
अन्यको उत्तम आचार पालन करनेका उपदेश देकर आत्म-स्वरूपमें  
रमण करनेका उपदेश करनेवाले ।

पुरससिद्धान्त—पुरस्कारों में सिद्ध समान सहिष्णु ।

पुरस्कारपुरस्कारियाणं—पुरस्कारों में उत्तम पुरस्कार कमलक सदृश महान और तनम्बी ।

पुरस्कारगणित्थिग—पुरस्कारों में उत्तम गन्ध हन्नीकी तरह आत्मिक कृपसे रचित ।

लोगुत्तमाण—उत्तम साधन सामर्थ्योकी रचना करनेवाले लोकमें उत्तम ।

लोगनादानं—लोकके नाथ ।

लोगहियाणं—लोकका हितोपदशी ।

लोगपद्मणं—लोकका ज्ञान दीपक ।

लोगपञ्चोद्योगणं—लोकका विशेष प्रयोजक ।

अभयदयाणं—अभयदानका दानवाला ।

चक्रदयाणं—ज्ञान रूप नेत्रक दाता ।

मार्गदयाणं—असंग मार्गक दाता ।

शरणदयाणं—शरण ( आश्रय ) दाता ।

जीवदयाणं—संयम जीवनदाता ।

घोहादयाणं—उपदेशक दायक ।

धर्मदयाणं—धर्म पथपर लगानेवाले ।

धम्मदसियाणं—धर्म सन्दर्श पहुंचानेवाले ।

धम्मनायकाणं—धर्मक अनुकूल नियमोंक रचयिता ।

धम्मसारहीणं—धर्मरूप रथक चलानेवाले ।

धम्मरत्ताउरत्ताउरत्तरीणं—धर्म प्रधान, चार गतिका अन्त करनेवाले चक्रवर्ती ।

दीपोत्ताण शरणगइपइष्टा—चार गतिमे पडत हुए जीवोंकी सरक्षण करानेमे टापूकी तरह शरण रूप ।

अप्पडिहय—अनन्त काल तक रहनेवाले—वर - उत्तम और प्रधान ।

नाणदसग—ज्ञान दर्शन ।

धराण—सम्पन्न ।

वियट्टउमाण—जिसका हृदयस्थ भाव चला गया है ।

जिनाण—राग, द्वेष, कर्म जीतनेवाले ।

जावयाण—औरोंको राग द्वेष जितानेमे सहायक ।

तिन्नाण—संसार समुद्रको तरनेवाले ।

तारियाण—अन्यके लिये संसार समुद्रका अन्त करानेमे सहायक रूप ।

दुद्धाण—सम्पूर्ण तत्वज्ञानको हस्त सिद्ध करनेवाले ।

बोहियाण—अन्यको तत्वज्ञान समझानेवाले ।

मुत्ताण—कर्म बन्धनसे मुक्त होनेवाले ।

मोयगाण—अन्यको बन्धनसे मुक्त करानेमे सहायक होकर उसका मार्ग बतानेवाले ।

सञ्चनुण—सब कुछ जाननेवाले ।

सञ्चदरिसीण—सब कुछ बरतनेवाले ।

सिप—उपद्रव रहित-आत्म-कन्याण

अयल—चलायमान नहीं होनेवाला ।

अरुज—रोग रहित ।



अनन्त—अन्त विनाश रहित ।

अक्षय—एक रस

अब्जाबाह—अब्जाबाध पीड़ा रहित ।

अप्पुणरात्रिति—उस स्थलमे पतन न हो ।

सिद्धिगइ नाम धेय टाण संपत्ताण—सिद्धिगति नामक स्थानक  
पानेवाले ।

नमी जिगाण—साठ भय जातनेवाले

जिय भयाण—नीधंकरको मेरा नमस्कार हो ।

उपरोक्त नमोत्थुण अथवा किसी अन्य स्तवनान्तिसे जो कि प्रभु गुणगानका सुन्दर सूचक हो उससे प्रभुके गुणगान प्रति पूर्ण प्रेमसे करना चाहिये ।

## तीसरा आकरक

### पटिवत्ति ( घटना )

पवित्र पुरुषोंका गुण गाते-गाते उनके प्रति अपरिमित प्रेम पूज्य बुद्धि अल्प होनपर स्वाभाविक रीतिसे नमन हो जाता है। वह वन्ता है ।

महात्मा पुरुष यदि उपस्थित हों तो बहुमान पूर्वक इन चरणोंम मस्तक नवाकर उन्हें तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करना चाहिये ।

और यदि व उपस्थित न हा तो उन्हें अपने ममक्ष उपस्थित समझ कर शान्त चित्तसे सम्पूर्ण धारणा करनी चाहिये, और उनका माश्रान्-स्वरूप खडा समझकर उनको प्रेम पूर्वक वन्दना कर ।

**वन्दना विधि**—उनका दर्शन कल्याणकारी, मंगलकारी, समझकर उनको साक्षात् धर्मदेव मानकर ७-८ पद सन्मुख जाकर वाया गोडा उ चा रख कर, दहिना गोडा जमीनस लगाकर दोनो हाथ जोड़कर, दहिने कानसे बाये कान तक प्रदक्षिणा करने, तीन चार अपना मस्तक नगाकर भावसे उनकी सेवा और भक्ति करनी चाहिये ।

## चतुर्थ-आकश्यक

**ग्रहियस्स निवणा**—( जिन ममय प्रतिग्रमण करना हो, उम ममयसे पूर्वकालमे अथवा उस दिन, जो जो दोष हुए हैं, जिन चिन योगों द्वारा स्वभाव-स्वभावसे स्वरुना हुई है विभावमे परिण-मन हो गया हो, उसे एकरे बाद एकरे शान्तभावसे दख जाना, और उसका पञ्चात्ताप करते हुए उन दोषोंसे पीडा हट जाना । )

**अ-देवसी राटसी प्रतिग्रमण**—संरसे साम तक वसी ही स्वरुना हो गई है या नहीं, उसे सध्या समय देखना देवसी प्रतिग्रमण है और माममे संर तक होनेवाली स्वरुनाओं-को स्मरण करके उनका अग्रलोकन करना 'राइ' प्रतिग्रमण है ।

## आ-पत्नी चौमासी और साप्ताहिक प्रतिक्रमण

**पात्नी—प्रतिक्रमण—**यह सोचना कि गत पक्षमें इस पक्षमें कितना सफलता हुई, और कितनी स्थिरता हुई। इसका जोड़ निकालना, इसी प्रकार चातुमासिक साप्ताहिक विषयमें भी समझना चाहिये।

प्रभुका गुण करनेका 'साध्य' क्या है उसका भान होता है। उसे दरमनपर यही होगा कि—सन्मार्गम्प पथ कहां और मिथ्यात्व अरिस्त, प्रमाद, रुपाय और अशुभ योग युक्त यह मेरा चरित्र कहा ? स्वभाव दशा कहा और मेरेमें प्रवर्तन करनेवाली विभाज दशा कहा ? अर र ! अत्र तकका परिभ्रमण तो मात्र भ्रातिये ही होता रहा।

ओ भ्रान्ति अज्ञान मोहशा। तर कुसंग वशमें पड करमें, जडमें ही मुख मान पंठा स्वाथवश अनर जीवोंको नाना प्रकारस में दुःख दिये।

असत्य—मिथ्या भाषणमें ही मैंने प्रवर्तन किया, अनेक विष छोटी मोटी चोरी की। कई प्रकारका व्यभिचार सेवन करता रहा।

परिग्रह—इच्छाओंका किसी भी अशमें निरोध करनेके समान प्रयत्न नहीं किया। बस। अब तुम अन्तिम प्रणाम है। अत्र मैंने आन्तरिक प्रभुको आज्ञाक पालन करनेमें लूंगा।  
जैसे वनगा जैसे दश निकाला दूंगा, और योगमाका । तब वह शुभयोगमें ही प्रवर्तित होगा।

अथवा—निम्न सूचनाओंको विचारना और उनके भावोंको पहुचनेके मार्ग जो कि मन, वाणी, कायके योग ऋटक रूप होकर आग पडे हुए हैं उनको प्रतिशोध करके निकाल डालना ।

उसे शोधकर, उसकी निन्दा करके, उसके लिये अन्तरमें सच्ची अर्हाच उत्पन्न करके, ऐसी प्रवृत्तिके लिये दान्तविक्र पश्चात्ताप\* करके उससे दूर रहना और धर्म-ध्यानमे ही प्रवृत्ति कर कि— जिससे उसका भावको प्राप्त किया जा सके ।

\* भूल होनेपर ही पश्चात्ताप करना चाहिये और उम भूलका मूल कारण शोधकर, उसको निर्मूल करके फिर उस तरह भूल न होने पाये, इसलिये सज्ज होना चाहिये । परन्तु अपन जैसे तत्कालने नवीन विद्यार्थियोंको, प्रत्येक प्रवृत्तिक समय मोह दशाके कारण उस सूचनाके भावका भान नहीं रहता, इससे जब निवृत्तिका समय पाकर बैठते हैं और विचार करते हैं कि—आज क्या-क्या प्रवृत्तिएँ धनी है । उस समय अपना भाव सूचनाके अनुसार रहा या नहीं । उसका भान होता है । इसीसे सगर शाम प्रभुने प्रतिभ्रमण करनेकी आह्वा दी है । परन्तु उसमेंसे चढते चढने ऊँचा दजा प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये । वह यह कि—प्रत्येक प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके प्रसंगपर प्रत्येक सूचनाके भावका भान रह । यह दजा जब हासिल होगा तब आत्माका साभान्कार और निरीक्षण प्रतिभ्रण होता रहगा । तदनन्तर 'द्वसी और राई प्रतिभ्रमण' के नियम लागू न होंगे ।

**ज्ञान**—अस्वाध्यायका फाल छोड़कर एकाम चित्तमे, स्पष्ट उच्चारण द्वारा स्वाध्याय करना चाहिये, और अस्वाध्यायके समय ध्यान ।

**दर्शन**—जहाँ तक देहभाव, महभाव सखन करनकी इच्छा है वहाँ तक मिथ्यात्वको छोड़कर प्रभुकी आज्ञाम हृद् श्रद्धा रख्य । वह सम्यक्त्व कहलाता है । अर्थात् आत्म दर्शन ।

**चरित्र और तप**—प्रथम धन समान भाव—सब प्राणियोंको लोकम आनन्द करनका समानाधिकार है । इस अधिकारकी धीनकर किसी भी प्रकारसे स्वायत्त लोक, स्त्री सन्तान माता पिता, बहिन भाइ, मित्र जाति, जन, मेयक, गाय, भैंस, घोडा पशु, पत्थी इत्यादिकी अनेक जातिय वानर्नोम डाल उत है । अधिकारसेवन या अगोपाग तप काट लेवे हैं । उनक इन्त्य ममको छेन्ने तपका बनाव करत हैं । नन्की शक्ति परान्त अनक प्रसारक कामकान और घोमक तप लादन हैं । कूटनीतिका व्यवहार चलाकर उन्ह अन्न पानी, आजीरिका तपको अन्तराय टालने हैं । उनको आर्ययज्ञानुसार साधन और सुगमे विमुक्त रखने हैं । परन्तु नन्क साथ इस तरह बनाव करनेका किर्मीको क्या हक है ? इतने पर भी उन जीर्माकी हम फिर रक्षा करनेको डीढोरा पीटते हैं । यह ता अपना एक प्रसारका स्वाध हुआ । अतएव प्रत्येक जीवक प्रति अपना स्वार्थ बचन छोड़कर, उनक साथ एकताका बनाव करनेके लिये भावना बनाकर उनकी गुमारीको पानके लिये दिन रात करना चाहिये ।

## भावना

गामेमि सत्रे जीवा सत्रे जीवा सम्तु मे ।

मिति मे सत्रभूण्णु, रेर मज्ज न केणइ ॥

सत्र जीवोंकी अवज्ञाओंको मैं क्षमा करता हूँ । इ सर्वजीवो । तुम्हारे प्रति जो कुछ मुझमें अपराध हो गया है उसे क्षमा करे । मेरा सत्र जीवोंसे मैत्री-भाव है । क्रिमीक साथ वैर-भाव नहीं है ।

इस भावनाको अहर्निश अन्तरमें रग्नकर व्यवहारमें प्रवर्तन कर, जिमक द्वारा अखिल विश्वके जीवोंक साथ ऐक्य-भाव प्राप्त होगा । ऐक्य-भावकी प्राप्ति होनेपर भेदभाव युक्त जडभाव पुद्गल प्रेम नष्ट होकर सत्र स्वस्वरूप ही भासमान होगा ।

**द्वितीय सत्यव्रत**—मैं क्या धोखना चाहता हूँ ? वह भी किम लिये ? उत्तरमें कहना होगा कि—सत्यकी शोधने लिये । या दहको निभानेके व्यवहारके लिये ? धोखनसे पूरा यह विचार कर लेना चाहिये । असत्य पुद्गलक पर्दमेसे सत्य आत्माको निकाल कर उसका उद्धार कर लेना चाहिये ।

**तीसरा आचौर्य व्रत**—मैं क्या क्रियाएँ कर रहा हूँ ? वह किसीके मालकी चोरी तो नहीं है ? प्रत्येक क्रिया करनेसे पहले उसका विचार अवश्य कर । साथ-साथ यह विचार भी करे कि—चोरी किमकी करूँ ? सत्र जड है, क्षणिक है, यह किमी तरह सगा सुख देनेवाला नहीं है । आत्मिक सनाना लुटाये लुट नहीं सकता, और वह शुभ प्रयाससे प्राप्त होता है । परन्तु परवन्तु

पुद्गल कभी अपनी (चेतन) नहीं बन सकती। अतः उससे ममत्व रखना मूठ है।

**व्रतप्रचर्य**—खोका खोत्व और पुण्यका पुरपत्व जड़ भाव है। वह मेरी समस्त शक्तिको नाश करनेवाली है। कायिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति क्षय हो जाती है। उसमें लुब्धमान धनकर भा जड़वत् बन जाऊगा, और उसीमें अनेक जन्म जन्मान्तर तक मड़ना पड़ेगा।

खोको स्वपत्निमें और पुरपत्नी मशारासन्तोषमें मन रखने हुए हम भावको प्राप्त करनेका प्रयास करना चाहिये।

**अपरिग्रह**—जड़ भावपर प्रीति रखना परिग्रह है। वही यत्न है, वहाँ भिन्न भाव है। उसीसे संसारकी वृद्धि और भीषण क्रान्ति नष्ट बन जाते हैं। इसे धर्म करनेवाला पुण्य साध और सरल बनता है। उमका त्याग करनेवाला मुक्त होता है। अतः उसे कम धर्मका प्रदान कर।

**द्विजिपरिमाण**—मैं कहाँ कैसी प्रवृत्ति करता हूँ, यही विचार, निश्चयका इन्द्र बांधता बांधता पर इष्ट ध्यानको हा स्थिर करता है। सत्यकी मय वहि प्रवृत्तिकी क्षेत्र संतुष्टि करने करत बनरकी और विशेषानिविशेष प्रवृत्त होता है।

**उपभोग परिभोग**—(प्रभ) —मैं किसलिये ध्यानध्यानदि पदार्थोंको उपभोगमें लेता हूँ ?

तत्पर—दीरक्षा निवाह करनेके लिये।

- पदार्थोंका परिमाण—(प्रश्न)—शरीरका निभाना ही किस लिये ?

उत्तर—शरीर एक अपने सकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टि है। अतः उस उत्पादिरूप प्रारब्धको भोगे बिना छुटकारा नहीं। इससे उसमें स्थित होकर, सम चित्तसे, उन सकल्पोंका फल पूर्ण रूपसे भोगनेके लिये, या भोगते समय जिनको समवृत्ति रफूगा, उतने ही प्रमाणमें हमको सुख या दुःख मालूम दे सकेंगे। सुख या दुःखका भान मोह दशाके कारण जड़ भावके ऊपर है। इसका ज्यों-ज्यों परिणामका विश्वास होता जायगा त्यों-त्यों आत्माको जड़-सत्ताका भान विशेष विशेष होता जायगा अतः अपनी सृष्टिमेंसे मोह भावका उच्छेद करनेके लिये, यथाशक्ति शीघ्र ही पूरे जोशमें कमर कम्बो, मोहक उच्छेदके प्रमाणमें अपने स्वरूपका अनुभव होगा। रामका (आत्माको) अपने आनन्द स्वरूपमें मस्त रहनेके लिये रावण (मोह) का नाश करना चाहिये।

प्रश्न—शरीरको निभानेके लिये मैं किन किन पदार्थोंको उपभोगमें लूँ ?

उत्तर—जो पदार्थ शरीरका रक्षण करे, मनमें उन्माद पैदा न करे, सात्त्विक वृत्ति उत्पन्न करे, ऐसे पथ्य साद और प्रमाणमें भी अल्प पदार्थ लेना चाहिये।

प्रश्न—इन पदार्थोंको किस व्यापारसे प्राप्त करूँ ?

उत्तर—जिसमें अल्प आरम्भ हो, जिसमें अधिक समय मनकी समतोलन वृत्ति रह सके, जो अपने तथा अन्यके शरीर और



आजीविकाको अधिक नुकसान न पहुँचाता हो। जोड़ेमेसे जिससे सत्रको न्यूनार्थिक अशम लाभ हो मयें ऐसे उद्योग व्ययसायसे मैं अपने एव अपने सुदुस्वर भरण-पोषणके लिये यह कुछ करूँगा।

अपने जीवनको साग और सरल बनाकर प्रारब्धको भोग लूँगा।

अर्थसे लाभ और अनर्थसे दृष्ट-आत्म स्वस्थमे लान रहनेको अर्थ कहत हैं, और जड भागमे लीन रहनेको अनर्थ। इस अनर्थके कारण लोकमे दृष्टि होना पन्ता है। गति आगति करनी पडता है। अत इस दहने लिय की जानेवाला अनक प्रवृत्तियोंमें आर्त्तरीक्ष ध्यान रहित रूढ़ भागसे रहना और प्रत्येक श्वग अन्तरमे यनी दृढता रखव कि—स्वभायमे परम आनन्द और विभायमे परम दुःख है।

### आत्म-शान्ति पानेका प्रयास

थोडे समयकी सामार्थिक—प्रथम शरीरको स्थिर कर। स्थिर शरीर रहनेसे सहजमे मौन रह सकता है। इसी प्रकार शरीर और वाणीकी स्थिरनासे शरीरका प्राणवायु स्थिर होता है। प्राणवायु स्थिर होनेसे दृष्टि और मन स्थिर होत हैं। दृष्टि और मन स्थिर रहनेसे परम शान्तिनी प्राप्ति होती ही है। उस परम शान्तिना प्राप्त करना ही सामार्थिक है। इन उत्तरोत्तर पैडियोंपर चढनेका प्रयास करना चाहिये।

### आहार विहारकी नित्यकी योजना

देशावकाशरू—छठवा दिशा परिमाण धन और सातवा

उपभोग-परिभोगधे पदार्थोंका परिमाण धन सारे जीवनका आहार-विहारका बजट बांध देता है, और यह दगवा देशप्रत उनमेंसे नित्य-नित्यका बजट बांध देता है।

प्रवृत्तिना और निवृत्तका सारी जिन्दगीका बजट निश्चय करना और उसमेंसे प्रति दिनका, प्रति घंटोंका, प्रति मिनटका, प्रति सेकेण्ट का, जो भाग आने उममे उसी तरहका वर्नाय रखना।

### आत्म-शान्ति पानेके लिये दिनभरका प्रयास

पौषध—आत्माको पोषणा—आत्माऽऽन्तारवृत्ति रखना या रखनेका प्रयास करना। पौषधमे २४ घण्ट आम-सम्मुख दृष्टि रखनका प्रयास किया जाता है, परन्तु इमके अतिरिक्त और कुछ नहीं करना चाहिये।

पवित्रदान वृत्ति—अतिथिमे महमान और भिक्षुका समा-वंश होना है। भिक्षु चाहे निस वस्तुके मागनेवाला और चाह जो हो। सत पुरुष भी भिक्षु कहलात है।

किसी भी पाहुने या भिक्षुका प्रभुके तुल्य सम्मान करना अथवा सम्पूर्ण दिनेक पूजन उनको आवश्यकतानुसार पदार्थ देना चाहिये। परन्तु उस समय पात्रता और अपनी स्थिति भी देखना चाहिये। श्रायकका द्वार अभय द्वार होता है। अत उसका द्वारमे कोई भिक्षु निराश होकर वापस न जाय, बल्कि अन्नादिक वस्तुओंसे या धनसे वचनमे, या किसी अन्य रीतिसे सन्तोष दकर लौटाया जाय।

अन्तिम समाधि—जो काम करो उसे निष्काम वृत्तिसे

कारण भास्यमान होता है। वास्तवमें दया जाय तो उसका अस्तित्व तीन कालम भी नहीं है। (इन भावनाओमेसे एक या सब, शांतचित्तसे स्मरणमे रखो और उनके अनुसार उपयोग करत चलो।

## दृष्टा अस्विक्यक

### गुण धारणा

जो जो वस्तुएँ आम ध्यानमें हाजिर मालूम हें, उन वस्तुओं का मूल कारण शोधकर उन कारणोंका त्याग करो और ध्यानमें नियम पूर्णक प्रतिदिन वृद्धि करते चलो। नियम या प्रतिज्ञाएँ ध्याम शान्तिको प्राप्त करनेके लिये साधन रूप हैं। जिस प्रसंगपर जिस सामग्री आवश्यकता प्रतीत होती हो उस समय उसका नियम करना उत्तम है। सन्मागमे प्रवेशकी इच्छा करनगले मुमुक्षुको निम्न लिखित नियम अपनी शक्ति तथा सयोगानुसार, अगीकार करके अपनी सारी जिद्दगीका बज्रट तैयार कर लेना चाहिये।

### गृहस्थ धर्म

• मुझे इस लोकमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये। उस

जीवनके लिये किन-किन साधनोंकी आवश्यकता है। उन साधनोंको प्राप्त करनेके लिये कौनसा धधा करना चाहिये। उन धधोंको चलान समय कैसा बनाव रखना चाहिये। वह धधा कितने समय तक करना चाहिये, और बाकी समय किस प्रकार बिताया जाय, उसका निश्चय करे। वही गृहस्थका श्रुत और चरित्र धर्म है।

(१) ज्ञान—जिनमें अमुक समयमें नियमित रूपमें, प्रभुके कहे तत्व बोधका स्वाध्याय, श्रवण और मनन करना चाहिये, नए तत्वमें लोकलोकका सम्पूर्ण स्वरूप आ जाता है। उनके मंड भावमें अपनी-अपनी बुद्धिक अनुसार दृष्टि डालकर उसके तत्वको समझना चाहिये। इसीसे प्राप्त होनेवाले भावानुसार आत्माकी उज्ज्वलता होगी।

(२) दर्शन—उन तत्वोंको अपूर्ण श्रद्धा भावसे जानना चाहिये।

(३-४) चरित्र और तप।

क—पाँचवा तप।

अ—खेत, बाड़ी, कर्षा, इत्यादि उधडी हुई भूमि, तथा घर, दुकान आदि ढँकी जमीनकी।

आ—सोने चाँदीकी।

इ—नकदीकी।

ई—धान्यकी।

उ—द्विपद, चतुष्पद प्राणीकी।

ऊ—भोग्य सामग्री आदिकी।

सात और सरल जीवन बितानेके लिये सार जीवनमें कितने

प्रमाणम आश्रयकता है, उसका निश्चय करके उनकी सीमा धारूंगा।

(घन ४ वां) ऋ—स्त्री पुरुष।

पुरुषक लिये—(१) (मे अपने विचार, स्थिति, साधनोक्त वारीकास अलोकन करके) एक ही स्त्री करूंगा। (एक पत्नी ज्ञत)।

(२) अपनी स्त्री साध भा पशु घृति न रक्षूंगा। अमुक नियम रक्षूंगा।

(३) अमुक संतति होनेपर (पुत्र पुत्री होनेपर) जर्धना अमुक वप व्यतीत जानपर मयथा प्रद्वचर्यका पालन करूंगा।

स्त्रार लिये—(१) मे एक ही पति रक्षूंगा।

(२) अपने पतिको भा अपनेमे पशुवृत्ति रगनेमे रोक धाम करूंगा, और अमुक अमुक नियमम रहुगी।

(३) अमुक सन्तति होनेपर या अमुक वपव्य वाद सयथा प्रद्वचर्य पालन करूंगा।

ऋ सन्तान—(१) पुत्रको अमुक प्रकारकी शिक्षा दिलाऊंगी।

« खानपानादि तथा वस्त्रादिका जो परिग्रह मैंने रक्ता है। उसममे मुझ अपने जानन पर्यन्त कितने प्रमाणमे अपने उपयोगमे लना है। उसका नियम करूंगा, और उसका द्वारा मिनाहारा तथा नियमित धनूंगा।

(घन ७ वां अ)

वह मणकी आश्रयकताके लिये निश्चित पदार्थोंमसे आज किन-किनको कितने प्रमाणम उपभोगमे लना है, जिसका निश्चय करूंगा।

(घन १० वां अ)

( २ ) पुत्रीको अमुरु शिक्षा निलाऊगी क्योंकि दोनोंका व्यवहार अलग-अलग है। अत उनके विकासके लिये भी अलग-अलग शिक्षाकी आवश्यकता है।

( ३ ) वे गृहसेवा, समाजसेवा, देशसेवा, धर्मसेवामें भाग लेना सीख ऐसी योजना करेंगे।

( ४ ) उनका अमुरु समयके धाद लग्न करायेंगे। स्वतन्त्र व्यवहार चलानेमें शक्तिमान होनेका विश्वास होने पर।

( ५ ) उनका विवाह आदिमें उनको मात्र जिस मार्गमें लाभ होगा उसी मार्गमें वर्तन करायेंगे। व्यर्थक खर्चमें न पड़ेगे। लोककी झूठी लज्जामें न बह जायेंगे।

ए—माता, पिता, भाइ, बहन ( १ ) उनका सन्मान बढ़ायेंगे।

( २ ) उनकी उचित सेवा करेंगे।

( ३ ) संपकी रक्षाका प्रयत्न करेंगे।

ए—मित्र, स्वजन, सन्धन्धी ( १ ) उनके साथ प्रेम वदे उसी प्रकार वर्तेंगे।

( २ ) व्यर्थ व्यय करके उनसे मौज न उढायेंगे।

( ३ ) उनके साथ वातालाप, मान, सम्मानादि व्यवहारमें ही न रुककर, एक दूसरकी उत्त्रान्ति, किस प्रकार वदे एसा प्रयत्न उपयोगमें लायेंगे।

ओ—गृहव्यवस्था ( १ ) सन्का कार्यक्रम एसा बना लिया जायगा जिससे वे सब उत्साह पूर्वक इनमें भाग ले सकें।

( २ ) घरमें स्वच्छता, खान पानादि पदार्थ सड विगड न जायें,

उनकी दर दर प्रवाही पत्रों धामके अतिरिक्त प्रसंगोंमें हवे रहे  
ऐसा ही प्रथम तथा घरकी सादगीकी दर दर ।

( ३ ) रचकी रीतिसे, आन-मनानके पदार्थ, कपड़े, ईर्ष्या,  
वदमानो, अपशब्दोंको जैसे धने धंसे घरमेंमे शब्दी निकाल बाहर  
करेंगे ।

( ४ ) दिनेके अमुक समयमें सत्र एकत्र होंगे, और दिनचर्याके  
प्रसंगमें, नवोन प्रसंगके विषयमें बातलाप करेंगे ।

( ५ ) आपसकी सेवा, रोगीकी शुद्धता, अतिथि सत्कार,  
सत्समागम, परीपकार वृत्ति, किस प्रकार उद्य पाकर वने ऐसे  
मागकी योजना करेंगे ।

औ—समाज धर्म—समाजके अन्धाधुंध रिवाजोंको बन्द करेंगे  
सुधारके फैलानेका प्रयास करेंगे । वे सुधार समाजके लिये आर्थिक  
शारीरिक और नैतिक लाभ कारक हैं या नहीं? इसका पहले  
पुरजा विचार कर लेना चाहिये ।

( २ ) उन सुधारोंकी पहल सत्र प्रथम अपने घरसे ही आरम्भ  
करेंगे । सन्मार्ग फैलानेका प्रयत्न करेंगे । मर अपनेसे गृह, मित्र,  
स्वजन, सम्बन्धी, भाति, दश, परदश तक फैलाकर रहेंगे ।

किस प्रकार सेवा करनी चाहिये, इसकी योजना अपनी-अपनी  
शक्तिक अनुसार समझो कर लेनी चाहिये ।

र ७ वा प्रश्न—जीवनमें साधन प्राप्त करनेके लिये जिस  
उद्योगसे, सुभे, मेरे घरकी, मर ग्रामकी, मर देशकी लाभ पहुंचेगा  
उस उद्योगमें प्रवर्तन करूंगा ।

६ वा व्रत—वह उद्योग मुझे सारी दुनियामे किस जहग रह कर जीवन पर्यन्त करना चाहिये उसका निश्चय करना ।

१० वां व्रत—जितना क्षेत्र उद्योगके लिये निश्चित किया है उसमे भी कितने भागमे आज प्रवृत्त रहूगा उसका निश्चय करूगा ।

वह उद्योगमें अमुक-वर्षतक करूगा, इसके पश्चात्का जीवन शांत अवस्थामे विताऊगा ।

आठवां व्रत—मैं इसमे चिन्ता, कषाय मय विचारोंका और प्रमादका त्याग करके लगूगा । ( झगडा, निन्दा, कुतर्क, हमी दिव्यी आदि न करूगा )

पहलाव्रत—व्यग्रहारमे और परमार्थमे, यन्नासे निचरूगा, जो धोलूगा, वही काम करूगा ।

दूसराव्रत—सत्य धोलूगा ( जो बात जिस रूपमे जान सका हू, उसे उसी रूपमें कहूगा ) या मौन रहूगा ।

तीसराव्रत—जो वस्तु अन्यकी है उस वस्तुका मालिक बनना कभी पसन्द न करूगा ।

चारहवां व्रत—अतिथि ( भिक्षु, त्यागी, गृहस्थ ) को अपने पाससे जिस ,किसी वस्तुके पानेकी इच्छा है उसका योग्य सत्कार करूगा । तन, मन, धन, वचनसे सेवा करूगा ( वचना या यशक लिये नहीं बल्कि निस्वार्थ प्रेम जागृत करनेके लिये ) ।

नवा व्रत—समभाव प्राप्त करनेके लिये सदैव थोडा समय अवश्य स्वीकार करूगा ।

ग्यारहवां व्रत—उस समय वृद्धि पाते-पाते एक दिन-रान सम-





## जीवन उपदेश

जड सुरा मां लुब्धाई, रहनीने, तें तारु आतम खोयूं ।  
 लख घौरासी फरी फरीने, नाव घदर आवी घायु ॥  
 हीरो हाथे घड़ेल हारीन, धूले लई मस्तक धोयु ।  
 हाय हय हस हाय घस्ये शुं, घाय अन्तर त ना जोयु ॥  
 मात, तात, महोदय, सुतने, महिला थी मनडुं मोछु ।  
 धार त्रिबसना चटक-मटक मां, त तारु सपलु खोयु ॥  
 अमृत अलगु अघ करीने, विप हलाहल त धोख्यु ।  
 मारन रूप मुक्ताफल मूकी घागलनी शूले चोख्यु ॥  
 परहर परवस्तु परमाती, जड मा तें जीवन खोख्यु ।  
 आ आतम अविनाशी सुरानो स्वामी गुन गम थी जोयु ॥

## मुमुक्षुने बोध

जाग जन । जाग जन मोह निद्रा तजी ।  
 घात त्रिचार तू कयां थी आव्यो ॥  
 शब्द वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तारे न थी ।  
 आप भूख्यो अरे अवर फाव्यो ॥  
 पर गुण पर हरी स्वगुण शोधी लई ।  
 योग्य उपयोगे जो स्वरूप तारु ॥  
 कशारी सिंह तू कैद मा कयां पहयो ।  
 मेल अज्ञान ने हु न मारु ॥  
 स्वप्न मां राजके रकनी स्थिति लही ।  
 जगत् मां सर्वने मूठ जाण्य ॥

आम वज्ञान थी अरुनी मां आतमा ।  
 सुगने दुःख मोहाध माग्युं ॥  
 रज्जु भोरींग त रातना रूप मां ।  
 अर्क उदय पद्मी मूठ जाग्यु ॥  
 मर्कट वृते घञ्चु द्वाय सिद्धमहु ।  
 मोहनी द्याक मां मीठ माग्युं ॥  
 चेत नर चेत नर हेतकर ज्ञान थी ।  
 वश कर इन्द्री मन मस्त हाथी ॥  
 भ्रम-भगी सह, व्हेम वामी दू ।  
 लोभन दूर कर तृणा नाठा ॥

### सहायक

जैन हितेच्छु, आगमसारोद्धार, भावावश्यकक साथी लग्नकोका  
 उपहृत हं ।

—सम्पादक ।

## क्वचनःसृत्

(१) संयम-गुणस्थानसे भूलकर असंयम-परस्थानमें आत्मा जाने लगे तत्र उपयोग द्वारा सयम गुणस्थानमें आत्माको ले जाओ, क्योंकि भूलका पद्धताजा करना ही तो प्रतिग्रमण है ।

(२) उदय भावमें अनादि कालसे है, अत उस घरको छोडकर क्षयोपशम भावमें खेलकर, दृष्टस्थितास अपना घर छोडकर पर घर रूप उदय भावमे शून्य उपयोगम जानेपर सचेत होकर आत्मा स्वस्वरूप सभाल कर अपना घर जो क्षयोपशम भाव है उसमें आकर बसनेवाला भाव पडित है ।

(३) सर्व भोजनकी तृष्णासे रहित होनेपर अन्तरग आत्म-स्वभावकी भावनाका अनुभव करत हुए संयम रूपी यात्राके निर्वाह-के अर्थ नीरागतासे निर्गुण आहार ग्रहण करनेवाला भी परमार्थसे अनाहारी ही है ।

(५) परद्रव्य सग रहित जीवना निर्मल स्वभावही शुद्ध उपयोग और परद्रव्यके प्रसंगमें जीवने मलिन स्वभावको अशुद्ध उपयोग कहत हैं।

(५) परद्रव्य मात्रकी निवृत्ति तथा परद्रव्य मात्रका परित्याग और आत्म द्रव्यकी रमणता ही चरित्र है ।

(६) सत्र इन्द्रियोंमे रस इन्द्रिय प्रधान है, उसे कानू कर ? नहीं तो पाचों इन्द्रिया प्रबल हो जायगी, और उससे कर्मबध होगा ।

(७) ध्रावरु थोडा बोलता है, काम पडनेपर बोलता है, चातुर्यता



(२२) विद्या, धर्म, सम्यता और तन्दुरुस्ती देनेवाला ही असली पिता है।

(२३) धर्मका मूल सम्यक्त्व है।

(२४) पापका मूल मिथ्यात्व है।

(२५) सुखका मूल सन्तोष है।

(२६) ज्ञानका मूल सत्य अभ्यास है।

(२७) क्रोधकी औपधि क्षमा है।

(२८) मानकी औपधि नम्रता-विनय है।

(२९) मायाकी औपधि सरलता है।

(३०) लोभका औपधि सन्तोष है।

(३१) भावतीर्थ—संसार सागरसे पार करनेवाली नौका है, और वह साधु, माध्वी, श्रावक, धाविकाके भेदस चार तीर्थ है। उनके महवासमें रहकर ज्ञान, दर्शन, चरित्रका पाना ही यात्रा है।

दृढ समकृति नर थोडला, शुद्ध-समकृति सम नहीं कोय।

समकृति विन चारित्र नहीं, चारित्र विन नहीं मोक्ष ॥

विश्व व्यापक और अनन्त अथात्मक जैन सिद्धान्तके गूढ और गुप्त रहस्यको समझो। और सम्यक्त्वको प्राप्त करो, अथात् आत्म-दर्शन तथा आत्माका अनुभव सम्प्राप्त करो, और धर्मके नामपर होनेवाले मगड़े घबेड़ोंको छोड़ो। तथा श्रीगीतरागके अमेद मार्गमें प्रवेश करो। हमारी अन्तिम इच्छा यही है। इत्यल्म्



